वोल्गा
के दर्पण में
गंगा
के चित्र

वोलगा के दर्पण में गंगा के चित्र

संकलन, सम्पादन और अनुवाद

साबिर सिद्दीक़ी

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य : रु. 30.00

प्रथम संस्करण : 1987

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

मुद्रक : कान्तिप्रसाद शर्मा द्वारा रुचिका प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण : चंचल

VOLGA KE DARPAN MEIN GANGA KE CHITRA
An anthology of Russian Poetry on India.
Compiled, edited and translated by Sabir Siddiqui.

अनुवादक की ओर से

बात जब सोवियत संघ व भारत की जनता के बीच निरन्तर बढ़ रहे परस्पर आदर व प्रेम-भाव तथा इन वांछित सम्बन्धों के उद्गम की होती है तो ध्यान अनायास ही पन्द्रहवीं शती तथा अफ़ानासी निकीतन की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता। रूस के इस व्यापारी की भारत-यात्रा—चार वर्षों तक भारत के विभिन्न स्थानों, यहाँ के लोगों, सामाजिक रीति-रिवाजों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का उनके द्वारा अध्ययन व उन संस्मरणों को जो उन्होंने भारत-भ्रमण के दौरान संचित किये, लिखित रूप में सुरक्षित करने की समस्त प्रक्रिया—उस समय की सम्भवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वह घटना है जिसने रूस व भारत में एक-दूसरे की सांस्कृतिक व साहित्यिक परम्पराओं के प्रति असीम रुचि का एक ऐसा दीप प्रज्वलित किया, जिसकी किरणों से मैत्री व प्रेम के रिश्ते अब भी प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

यदि साहित्य को जनता की रुचियों, आकांक्षाओं एवं स्वप्नों का दर्पण माना जाये तो उसमें भारत व सोवियत संघ की जनता के बीच निरन्तर सुदृढ़ हो रहे सम्बन्धों के स्रोतों की खोज करना सर्वथा उचित होगा। इस सन्दर्भ में रूसी व सोवियत कवियों की रचनाओं का अध्ययन स्वयं में एक रुचिकर विषय है। रूसी व सोवियत कवियों द्वारा रचित भारत विषयक कविताओं के इन अनुवादों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का मुख्य उद्देश्य भारत-रूस सम्बन्धों को समझने व समझाने का एक छोटा-सा प्रयास मात्र है।

रूसी भाषा में भारत विषयक प्रथम कविता 'नल-दमयन्ती' (1837-1841) वसीली झुकोव्स्की द्वारा रची गयी, जिसकी भूमिका का हिन्दी अनुवाद इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है। उसके पश्चात् समय-समय पर भारत के सम्बन्ध में अथवा भारतीय विषयों को स्पर्श करती हुई अनगिनत कविताओं ने रूसी साहित्य को रोचक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय सन्दर्भ में रूसी व सोवियत कवियों की कृतियों को, उनकी मुख्य

विशेषताओं एवं प्रकाशन काल के दृष्टिकोण से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। सन् 1857 से सन् 1917 तक के समय के दौरान भारत सम्बन्धी विषयों पर प्रकाशित हुई रूसी काव्य-कृतियों के मुख्य रचयिताओं में वसीली ज़ुकोव्स्की के अतिरिक्त अफानासी फ़ेत, अलेक्सेई तोल्स्तोई, अपोलोन मायकोव, सेम्योन नादसोन, वलेरी ब्र्यूसोव, कोन्स्तान्तीन बाल्मोन्त, इवान बूनिन इत्यादि के नाम हैं। इस काल की कविताओं की मुख्य विशेषता उनके रचयिताओं का अपने समकालीन भारत की संस्कृति, आध्यात्मिकता एवं नैतिक श्रेष्ठता से प्रभावित होना है।

सन् 1917 से सन् 1947 तक के तीस वर्षों के दौरान भारत से सम्बन्धित कविताओं की संख्या लगभग नगण्य है, जिनमें निकोलाई तीखोनोव की 'सामी' (1920) तथा सेर्गेई गोरोदेत्स्की की 'भारत' (1922) उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों के कवियों का रवैया एक ऐसे देश के पुलकित प्रतिनिधियों के समान है जिनकी मातृ-भूमि ने क्रान्ति के फलस्वरूप शोषण, अनादर, दरिद्रता एवं अभाव से मुक्ति पा ली है तथा जो भारत की दासता और यहाँ की जनता की तकदीर के प्रति जागरूक होने के साथ-साथ चिन्तित भी हैं तथा उन्हें दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने को आमन्त्रित करते हैं।

तीसरे काल के दौरान, जो सन् 1947 के बाद आरम्भ होता है, भारत के प्रति सोवियत कवियों की रुचि अभूतपूर्व है। इस दौर की सारी रचनाओं के संचय एवं अनुवाद का कार्य केवल एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। फिर भी इस पुस्तक में समकालीन सोवियत कवियों की उल्लेखनीय कृतियों को उचित संख्या में सम्मिलित किया गया है, ताकि भारत के विषय में उनके पक्ष को सुनिश्चित किया जा सके।

प्रथम काल की ऐसी कई कविताओं में, जिनका सम्बन्ध देव-गाथाओं अथवा प्राचीन लोक-कथाओं से है, मूल कृतियों के दृष्टिकोण से असामंजस्य दिखायी देता है। अफानासी फ़ेत की शकुन्तला एवं निकोलाई रेरिख की 'लक्ष्मी-विजयिनी' इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। भारतीय लोक-कथा की शकुन्तला तथा फ़ेत की नायिका शकुन्तला न केवल चित्रण अपितु कथा-वस्तु के दृष्टिकोण से भी पूर्णरूपेण भिन्न चरित्र हैं। इसी प्रकार 'लक्ष्मी-विजयिनी' में निकोलाई रेरिख ने शिव के ताण्डव-नृत्य को 'शिवा ताण्डवा' के नाम से अपनी कविता के एक महत्त्वपूर्ण चरित्र एवं लक्ष्मी की बहन व खलनायिका के रूप में चित्रित किया है। उस काल के रूसी कवियों की यह प्रवृत्ति विचित्र अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रति उनकी असीम रुचि से इन्कार नहीं किया जा सकता। कथा-वस्तु में जो अन्तर है, इस मामले में भी तथ्यों की प्रामाणिकता को सुनिश्चित करनेवाले स्रोतों व दस्तावेजों के अभाव को देखते हुए उनकी विवशता को समझा जा सकता है। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय बात यह है कि समस्त विवशताओं के बावजूद उन्होंने हमारे समाज, संस्कृति तथा जीवन सम्बन्धी दूसरे पहलुओं को समझने और समझाने का प्रयास किया है।

प्रोफ़ेसर नामवरसिंह के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके प्रोत्साहन के बिना मैं शायद इन कवियों के हिन्दी अनुवाद के बारे में सोच भी नहीं सकता था।

मैं प्रोफ़ेसर कुलदीपसिंह ढींगरा, रूसी अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय तथा डॉ. आशा कपूर, रुड़की विश्वविद्यालय का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन को सम्भव बनाने में अपना सहयोग दिया।

1 जनवरी, 1987 — साबिर सिद्दीक़ी

क्रम

वसीलो झुकोव्स्की (1783-1852)

वसीली झुकोव्स्की का जन्म तूला में हुआ। वे एक सभ्य एवं सुशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति बूनिन के पुत्र थे। उनकी तुर्क माँ को बन्दी बनाने के पश्चात् भूसक्त दासों ने उन्हें अपने स्वामी के हवाले कर दिया था। कवि ने अपना उपनाम अन्द्रेई झुकोव्स्की से प्राप्त किया जो आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने के कारण बूनिन के साथ रहने लगे थे। कवि को उन्होंने विधिवत गोद ले लिया था। तूला में शिक्षा दिलवाने के प्रयासों के पश्चात् उन्हें 'सभ्य' बच्चों के लिए विख्यात मास्को विश्वविद्यालय के बोर्डिंग-स्कूल में भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने साहित्य में विशेष रुचि ली। उनकी अनेक प्रारम्भिक कविताएँ यहीं प्रकाशित हुई किन्तु उनके काव्य-जीवन का वास्तविक श्रीगणेश अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि ग्रे की कविता 'एलेजी रिटेन इन ए कण्ट्री चर्चयार्ड' के अनुवाद से हुआ, जिसे 1802 में प्रकाशित किया गया। सन् 1812 में उन्होंने स्वेच्छा से नेपोलियन के विरुद्ध अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। उसी वर्ष देशभक्ति से परिपूर्ण 'रूसी योद्धाओं के शिविर में गायक' नामक गीत लिखा। युद्ध की समाप्ति पर झुकोव्स्की को सम्राट ने राजसिंहासन के उत्तराधिकारी की शिक्षा-दीक्षा के लिए आमन्त्रित किया। झुकोव्स्की का यही शिष्य भविष्य में सम्राट अलेक्सान्द्र द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दरबार से जुड़े होने और सम्राट के गुरु होने के बावजूद वे अपने विचार सदैव स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत करते रहे तथा जब भी जरूरी हुआ, लेखकों व साहित्यकारों की ओर से सरकार की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाते रहे।

झुकोव्स्की को रूसी रोमानवाद के पिता, महान् कवि एवं कुशल अनुवादक के रूप में जाना जाता है। अनुवादक के रूप में उन्होंने पश्चिमी भाषाओं की अनेक साहित्यिक रचनाओं को रूसी कलेवर प्रदान किया तथा जर्मन भाषा से कई ईरानी व भारतीय कथाओं को रूसी में रूपान्तरित किया।

नल-दमयन्ती

भारतीय कथा (भूमिका)

आजकल, सपनों पे जब करने लगे विश्वास हम
देखते हैं उनकी अनहोनी में भी होनी की बात
मैंने भी इक स्वप्न देखा है : मुझे ऐसा लगा
हो रहा हो जिस तरह
कश्मीर की घाटी की पुष्पित भूमि से मेरा गुजर,
ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की थी छटा चारों तरफ़,
झुटपुटे के आसमानों को
समेटे गोद में कुछ ऐसे आभासित थी झील
जिस तरह ऊषा की आभा से छलकता जाम हो
एक रस्ता उठ के पश्चिम की दिशा से
पूर्व में जाकर कहीं
मिल क्षितिज के साथ हो जाता था गुम
साँझ ने साधी थी चुप निःशब्द-सी हर चीज़ थी
इक चमक के साथ मेरे सिर के ऊपर
उड़ रहा था इक कबूतर जिसके पर
गुनगुना उठते हवा को छेड़कर
मेरे कानों ने अचानक
दूर से उठती हुई चीखें सुनीं;
देखता क्या हूँ कि पश्चिम की तरफ़ से
आ रही है तेजोमय सेना कोई
बढ़ रही है रेंगती घाटी की पुष्पित भूमि से
मानो हो नागिन कोई
फिर अचानक मेरे कानों ने विजय की ध्वनि सुनी
मीठा-मीठा दर्द जैसे आत्मा में घुल गया
सोच में डूबा हुआ मैं सुन रहा था
कर चुकी थी कूच सेना
देख पाया मात्र इक डोली कहीं ऊँचाई पर
हर्ष में डूबे हुए-से चीखते लोगों के बीच
एक साये की तरह

वह झिलमिलायी थी नज़र के सामने
उसमें थी बैठी दुल्हन जो इस तरफ़
उत्तर दिशा से आयी थी
झाँककर डोली के पट से उसने देखा मेरी ओर
और सारा दृश्य यह फिर से कहीं गुम हो गया—
और जब मैं होश में आया तो मानो हर तरफ़
रात का प्रभुत्व था,
औ' सितारों की चमक घाटी पे थी;
किन्तु मेरी आत्मा में जैसे चढ़ आया था दिन :
लग रहा था—
हो गया हो पूर्ण मानो ज्ञान सुन्दरतम का मुझमें,
घुल गया था एक ही चेहरे में जो
फिर अचानक स्वप्न बदला :
मैंने देखा, जैसे जा पहुँचा हूँ मैं शाही महल में,
आत्मा ने मेरी देखा था जो सपना
हो गया था सामने साकार मानो,
एक पल में उड़ गये वर्षों के पन्ने
छोड़कर जैसे
किसी जादू-भरे जीवन के चमकीले पलों की याद मन में
फिर अचानक स्वप्न बदला :
मैंने देखा—
आन पहुँचा हूँ किसी चौड़ी नदी के तट पे जैसे
हो रहा था अस्त सूरज,
झिलमिलाहट-सी समेटे बह रही थीं
जल पे नौकाएँ कई
पीछे-पीछे बन रहे थे
जिनके कदमों के रजतरूपी निशाँ
पास ही की झाड़ियों में एक घर आया नज़र
और कुछ ऐसा लगा, सहगामिनी मेरी अचानक
मेरी बिटिया को उठाये आ गयी हो सामने—
और जब जागा तो मेरा स्वप्न यह
एक सुन्दर आपबीती बन चुका था।

बह रही है धीमे-धीमे

मेरी तन्हा ज़िन्दगानी की नदी
अब कोई हलचल नहीं है
देखकर पत्नी का चेहरा—
जो कि मेरे ईश्वर की देन मुझको
ताकि अपनी रोशनी से मेरे मन को जगमगा दे—
देखकर सोती हुई बिटिया को माँ की गोद में
सुन्दर फ़रिश्ते की तरह,
ऐसा सुख महसूस करता हूँ कि जिसकी खोज में
प्राणी मारा-मारा हर इक फिर रहा
पर नहीं मिलता किसी को ऐसा सुख
और सुनता हूँ मैं वह आवाज जिसके पास है
विश्व की सब यातनाओं का इलाज
गूंजता है मेरे कानों एक स्वर :
"हो न तेरी आत्मा बिल्कुल दुखी
रख भरोसा ईश पर, मुझ पे तू विश्वास रख।"
भाग्य में मेरे लिखा था
अपने रक्षक के इन्हीं शब्दों को अपने हाथ से
अपने दो प्यारों की दो बिखरी हुई कब्रों पे लिखने के लिए
मैं बाध्य हूँ
और अब जीवन की ढलती साँझ की बेला में अपनी
ज़िन्दगी के बेवज़न पन्नों पे मानो
लिख रहे हैं मेरी बच्ची के
मेरी सहगामिनी के हाथ फिर वे शब्द सारे
ताकि मेरी कब्र के पत्थर पे मेरे सब दुखों को
शान्त करने की ग़रज़ से,
अपनी दुनिया के सुखों की,
अपनी दुनिया की लगन की,
और मानो
एक अनन्त जीवन की सुखमय आस में,
फिर इन्हीं शब्दों को गोदा जा सके

एक जीवित बाड़ द्वारा विश्व के सारे दुखों से दूर
जीवन-वाटिका के शान्तिमय एकान्त में अब
चली आती प्रायः कविता

अपनी गाथाओं से मेरी फ़ुर्सतों का मन लुभाने
आत्मा में अब भी जीवित है वही प्रज्वलित शोभा
जिसने मेरी आत्मा को कर दिया था मन्त्रमुग्ध
झुटपुटे के वक़्त अक्सर
आसमानों के किनारों पर कहीं
पर्वतों की ओट से मानो उभरती
बैंगनी, उजली शिखा के रूप में
जब दीखती हैं बदलियाँ,
कल्पना में कौंधती छवि और कोई :
ठीक मेरे स्वप्न की रचना सरीखा
इक हवाई देश में मानो पड़ा है
इस घड़ी मेरा अतीत
और यूँ महसूस होता है मुझे
वह रूप जिसके साथ की थी भेंट मैंने
ज़िन्दगी की राह में
हो गया है आज उद्भासित पुनः वह रूप
और अब दो रूप हैं इस रूप में :
एक सिर पर ताज रक्खे
दूसरा ताज़े गुलाबों का महकता हार पहने
हैं अलग, पर एक-जैसे हैं ये छवियाँ,
जिस तरह खिलती कली में पुष्प की हों प्रतिच्छवियाँ
डालता है मेरे ऊपर वह चमकती-सी नज़र
मुस्कुराहट अपने अधरों पर सँजोये
हू-ब-हू उस चित्र-जैसा
स्वप्न में जिससे मिला था
नाम उसका एक ही है
आज अर्पित कर रहा हूँ मैं उसे वह रंग अन्तिम
काव्य ने जिससे मुझे भूषित किया है
कर रहा हूँ आज मैं
उस खूबसूरत नाम को अर्पित ख़ज़ाना
अपने जीवन के दमकते दौर का
जो डालता है अपना जादू
मेरी जीवन-साँझ की तन्हाइयों पर।

1837-1841

अलेक्सेई तोल्स्तोई (1817-1875)

सेन्त पीतरबर्ग के एक अभिजात परिवार में जन्म हुआ। उक्रेन में बचपन व्यतीत किया, जहाँ उनके लेखक मामा अन्तोनी पोगोरेलस्की की जागीर थी। लड़कपन में ही कविताएँ लिखनी आरम्भ की, जिन्हें तत्कालीन सुप्रसिद्ध कवि वसीली झुकोव्स्की ने सराहा। सन् 1855 में सैनिक सेवा में प्रवेश किया, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से सेना में काम न करके सम्राट के अंगरक्षक की हैसियत से कार्यरत रहे।

अलेक्सेई तोल्स्तोई ने जीवन में कभी भी अपने स्वतन्त्र विचारों को नहीं छोड़ा। अपने स्वतन्त्र विचारों के कारण ही सम्राट की अप्रसन्नता मोल ली, क्योंकि उन्होंने चेरनिशेव्स्की एवं शेवचेंको-जैसे क्रान्तिकारी कवियों का बचाव करने का साहस किया था।

बंजारों के गीत

रूस को अपने गीत दिये हैं
हिन्द से बंजारों ने आकर
अपनी मीठी लय दे दी है
बाँझ ज़मीनों को अपनाकर

खन-खन करते बह निकले हैं
इनकी आवाज़ों के धारे
इनकी साँसों में जलते हैं
बिरहा के कितने अंगारे

अपने देश की याद में खोये
मस्त रहें मस्ती में झूमें

इनकी शेरदिली है लेकिन
इनकी रगों में इनके लहू में

इनके पास है स्वर कुदरत का
क्रोध भरा इनकी बोली में
इनके पास बरस बचपन के
खुशियाँ हैं दिल की झोली में

मुझे नज़र आती है इनमें
चाहत की आँधी गरमाती
खुशियों के संसार में इनके
चैन की बेला सुख बरसाती

इनमें दखिनी धूप की किरणें,
इनमें बंगाली कलियाँ हैं,
इनमें उड़ानें हैं चिड़ियों की
दूर तलक बंजर मैदाँ हैं

इनमें भयानक गुल कोड़ों का
कानाफूसी जल-धारों की
इस सबमें 'मारुसिया' तेरी
मीठी बातें धीमी-धीमी।

1840

अफ़ानासी फ़ेत (1820-1892)

अफ़ानासी ने ओरेल प्रान्त के एक समृद्ध भूस्वामी शेनशिन एवं एक जर्मन महिला शार्लोन्त फ़ेत के घर जन्म लिया। चर्च द्वारा उन्हें अवैध सन्तान घोषित किया गया, लेकिन फिर अपनी माता के उपनाम को अपनाने की आज्ञा मिलने पर उन्होंने 'फ़ेत' उपनाम धारण किया। चर्च की आज्ञानुसार उन्हें स्वयं को अभिजात कहने के अधिकार से भी वंचित होना पड़ा। उस समय उनकी आयु चौदह वर्ष थी। बाद में बड़े यत्नों से उन्होंने स्वयं को कुलीन कहने तथा अपने नाम के साथ पिता के नाम व उपनाम को उपयोग करने का अधिकार भी पा लिया। साथ ही साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने 'फ़ेत' नाम के साथ पूरी वफ़ादारी निभायी। उन्होंने मास्को विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की तथा दर्शन एवं काव्य के प्रति सदैव निष्ठावान रहे। अपनी मान्यताओं में वे कट्टर रूढ़िवादी थे तथा राजतन्त्रवाद व भूसक्त-दास व्यवस्था में विश्वास रखते थे। प्रकृति एवं सौन्दर्य उनके प्रिय विषय थे, जिनके कारण उन्होंने काव्य में असाधारण सफलता प्राप्त की।

शकुन्तला

[1]

भारत की रानियों में, जो तख़्त पर विराजीं
थी इक शकुन्तला भी
सब देशवासियों ने सिर पर जिसे बिठाया
थी जान से भी प्यारी अपने पति को भी जो
इक बार का है क़िस्सा अपने जनम-दिवस पर
जनता के साथ मिलकर खुशियाँ मना रही थी
खुशियाँ बरस रही थीं महलों में झोंपड़ों में
हर एक मन में उसके ही शब्द गूँजते थे,

सब शब्द, नम्र, सुन्दर
चेहरे पे तेज भी था,
विश्वास भी था मुख पर
मानो पहाड़ियों में, जब दिन ढले, तो सूरज
शबनम बिखेर डाले, ठण्डक बिखेर डाले
रंगीन आसमाँ से हरियाली घाटियों में
पर्वत की चोटियों पर जैसे नमी छिड़क दे—
ऐसी हसीन, इतनी सुन्दर शकुन्तला थी!
कारण यही था शायद
भारत की सारी जनता
बच्चों की सादगी से
रानी को देखती थी
उपहार उसको देते जो कुछ भी जिससे बनता
कोई फूल ला के देता, देता कोई सनोबर
कोई ला के करता अर्पित
उसे कीमती जवाहर
ऐसे भी थे कई जो
पूजा में लीन होकर
वरदान माँगते थे भगवान से कि उसकी
कृपा रहे हमेशा रानी शकुन्तला पर
रानी शकुन्तला जब अपने जनम-दिवस पर
खुशियाँ मना रही थी जनता के साथ मिलकर
बूढ़ा-सा एक ब्राह्मण लोगों के जमघटे से
आया निकल के बाहर
हाथों में टोकरी थी
जो ताक* से बनी थी,
औ' टोकरी के ऊपर कुछ काई-सी जमी थी
रानी के नौकरों ने जो द्वार पर खड़े थे
बूढ़े को आते देखा तो यूँ लगे वे कहने—
'अच्छा, तो यह ब्राह्मण इस टोकरी के बल पर,
जो ताक से बनी है और ऊपरी सतह पर
कुछ काई भी जमी है,

---

* अंगूर की बेल।

करने चला है मानो कुछ मेल-जोल पैदा
रानी शकुन्तला से !'
लेकिन बिना रुकावट बूढ़ा महल में पहुँचा
जाकर शकुन्तला के चरणों में टोकरी को
अर्पित किया यह कहकर—
'तू देखती है ऐ माँ, ऐ मेहरबान रानी
ये फूल टोकरी में, जो ताक से बनी है
सारे ये फूल बालक हैं उस महकते वन के
सीमाएँ जा के फैली हैं दूर-दूर जिसकी
वह भूमि जिस पे रानी
है तेरी हुक्मरानी
धरती वही, जहाँ पर
फिरती थी खोयी-खोयी
पहली बसन्त-रुत में तू अपनी जिन्दगी की।'
चुप हो गया ब्राह्मण
वह टोकरी कि जिस पर काई जमी हुई थी
अब तक शकुन्तला के चरणों ही में रखी थी
उसने नजर उठाई और टोकरी को देखा
काई की ओर ताका, फूलों को भी निहारा
और तख़्त ही से उसके स्वागत में मुस्करा दी
फूलों की सीधी-सादी थी भेंट कितनी प्यारी,
जिनसे शकुन्तला का बचपन जुड़ा हुआ था

घाटी की ओर वापिस था जा रहा ब्राह्मण
खेतों का रूप उसके मन को लुभा रहा था
रह-रह के याद उसको
अब भी शकुन्तला की मुस्कान आ रही थी।

[2]

अच्छी, हसीन, प्यारी रानी शकुन्तला ने
अपने जनम-दिवस पर की ईश्वर की पूजा
था प्राणनाथ रण में, जोरों का रण पड़ा था
हिलने लगी थी जिससे अब राज्य की जड़ें भी
चिन्तित बहुत थी रानी, और इसलिए भी

कि स्वामीभक्त थे जो सब काम आ चुके थे
जो बच गये थे उनको अब जान की पड़ी थी
एहसान जो किये थे वे सब भुला चुके थे
शायद यही वजह थी एकान्त में सुबकते
रानी ने आज अपना यह जन्म-दिन मनाया
यह जन्म-दिन नहीं था,
रानी के वास्ते तो यह दिन मरण-दिवस था
अन्दर अचानक आयी
दासी शकुन्तला की
और यह दिया सँदेसा—
''फिर फूल लेके घाटी से आ गया ब्राह्मन।''
बोली शकुन्तला यूँ एक ठण्डी साँस भरके—
''ये फूल भायेंगे क्या दुखियारी आत्मा को
मेरे बदन की शोभा ये फूल क्या बनेंगे ?
चल, खैर, जा बुला ला मेहमान को यहाँ तू
उपहार देखकर मैं शायद यह जान पाऊँ
दुख से भरे पलों में—
कितनी वफ़ा बची है इन सबके भी दिलों में।''
प्रवेश करके बूढ़ा
यूँ सिर झुकाये बोला—
''शुभचिन्तिका हमारी, क्या तू यह जानती है
तेरे दुखों से जनता तेरी बड़ी दुखी है
देखा था मुस्कुरा के तेरी तरफ़ जहाँ पर
पहली बसन्त-रुत ने
धागे वहाँ वफ़ा के
रिश्ते लगन के सारे
होते नहीं हैं कच्चे
हर इम्तहाँ में तप के
होते हैं और गहरे
जज़बात अपनेपन के
मैं आज फूल लेकर आया नहीं हूँ क्योंकि
मुरझा गये हैं अपनी घाटी के फूल सारे
वे फिर महक उठेंगे
भेजेगा फिर से ब्रह्मा

तूफ़ान बीतने पर
खिलती हुई बहारें
लाया हूँ आज लेकिन, ऐ मेहरबान रानी
अनमोल एक मोती
जिसका जवाब कोई भारत में तो नहीं है
अचरज-भरी निगाहें उस बूढ़े ब्राह्मण पर
डालीं शकुन्तला ने
यूँ बोला फिर ब्राह्मण—
"लाकर दिया था मैंने फूलों का तोहफ़ा तुझको
जब नाचती थी खुशियाँ तेरे ललाट-ऊपर
अब ले रहा है शायद तेरी परीक्षाएँ
अपना वह जन्मदाता वह ईश्वर हमारा
मुरझा गया है दुख से तेरा हसीन चेहरा
मैं जानता था इक दिन अपने जनम-दिवस को
तर हो के आँसुओं में तुझको मनाना होगा
ये अश्रु तेरे पावन शबनम हैं वास्तव में
उनके लिए कि जिनकी हैं आत्माएँ निर्मल
ये आत्माएँ जिससे फलती हैं फूलती हैं
यूँ अपने खास भक्तों को
तेज बख्शता है वह मेहरबान ब्रह्मा
मैं भी इसी वजह से आया हूँ पास तेरे
सबसे हसीन तोहफ़ा
कुदरत का भेंट करने।"
फिर मौन हो के उसने
आदर के साथ रक्खा
लकड़ी का एक डिब्बा
जिसमें चमक रहा था
काला सियाह पत्थर
अब उस सियाह पत्थर पे
आ गिरे थे रानी के
झिलमिलाते आँसू
आभा ने जिनकी दे दी
थी उस सियाह पत्थर को और भी चमक-सी

था मौन अब ब्राह्मण
फिर घर को जा रहा था
मानो भरी हुई थी
दुखमय खुशी-सी मन में
मानो वह देखता हो अब भी शकुन्तला की
आँखों से बहते आँसू।

[3]

गम्भीर-सा, दुखी-सा चिन्ता से ग्रस्त बूढ़ा
जंगल में घूमता था
रह-रहके आ रही थी
बूढ़े को याद विपदा
रानी शकुन्तला की
इक बार फिर अचानक
सीमा पे युद्ध भड़का
पूरब पे राज करने की कामना लिये अब
पश्चिम दिशा से उठ्ठा था बेरहम लड़ाकू
बेताब जंगबाज़ों के झुण्ड साथ लेकर
थी अपनी साज़िशों में
उसने सफलता पायी
डूबा हुआ था ग़म में फिर आज मानो भारत
रानी शकुन्तला औ' विक्रम के वास्ते अब
बूढ़ा दुआएँ करता दिन-रात ईश्वर से
बेकार थीं दुआएँ,
अब युद्ध बाढ़ बनकर पहुँचा था उस जगह पर
था जिस जगह का वासी वह बूढ़ा ब्राह्मण भी
चारों तरफ़ ही मानो इक लूट-सी मची थी
होकर हताश बूढ़ा
रहने लगा था जाकर अब दूर पर्वतों में
बेज़ार हो चुका था मानव की शक्ल से भी
दुख से था भारी सीना
थी मन में ब्राह्मण के
अब मौत की तमन्ना
पूरी न हो सकी थी बूढ़े की कामना यह

जीना पड़ा था उसको सुनसान पर्वतों में

इक रोज फिर अचानक
ऐसी हवाएँ आयी
खुशियों को साथ लायी
फिर शान्ति औ' विजय का संगीत प्यारा-प्यारा
वातावरण में गूंजा
पूजा में झुक गया सिर
उस बूढ़े ब्राह्मण का
उठकर तिलक लगाया
यूँ मन-ही-मन वह बोला—
मरने से पहले देखूँ मैं आज लग रही है
इस यादगार पल में कैसी हमारी रानी !
फिर टोकरी उठा ली,
घाटी के खूबसूरत सब फूल उसमें रक्खे
जैतून से सजाया
फिर नारियल के पत्तों से खूब उनको ढाँपा,
फिर चल पड़ा वहाँ से
चुपचाप जा रहा था
खुशियों में डूबी जनता की भीड़ से गुज़रकर
पहुँचा वह जब महल में
कुछ इस तरह मगन था
खुशियों से मानो उसका चेहरा दमक रहा था
फिर उसने ओंठ खोले
और यूँ महल के सारे वह नौकरों से बोला—
"लेकर चलो मुझे तुम रानी शकुन्तला तक
ताकि मैं उसके चरणों में अपनी भेंट रख दूँ।"
यह बात सुनके नौकर पहले तो चुप रहे, फिर
रोने लगे अचानक
पूछा जो ब्राह्मण ने, "रोने की बात क्या है
क्या बात है तुम्हारे चेहरे बदल गये हैं ?"
सुनकर ये बात नौकर बोले कि तू नहीं है
शायद यहाँ का वासी
तू जानता नहीं है क्या हो गया यहाँ पर ?

बूढ़े को लेके पहुँचे फिर उस जगह ये नौकर
रानी शकुन्तला की थी जिस जगह समाधी
"तू जानता नहीं है यह दिल दुखों की वर्षा
जब और सह न पाया···" रोने लगे यह कहकर
कुछ और कह न पाये
लेकिन कोई चमक-सी बूढ़े के मुख पे आयी
आँखों में तैर आया इक तेज-सा अचानक
"महसूस कर रहा हूँ मैं किरणें काल-सागर
की जिनके बीच में है डूबा हुआ वह ब्रह्मा
और उसके सामने ही बैठी है भोर-बदली
पे खुद शकुन्तला भी, हमको निहारती है
अब शान्ति-देश का यह सबसे पवित्र तोहफ़ा
बरसा रहा है आभा
परलोक से धरा पर
ओ तेज-स्वामिनी सुन,
मैं फिर खड़ा हुआ हूँ तेरे लिए समेटे धरती के फूल सारे !"
चुप हो गया ब्राह्मण
फिर झुक गया जहाँ पर रानी की थी समाधी
धीमी-सी पड़ गयी थीं माहौल में हवाएँ
भगवान ने उसी क्षण
बूढ़े की आत्मा को स्वीकार कर लिया था !

1847

अपोलोन माईकोव (1821-1897)

जन्म मास्को में हुआ तथा मास्को के समीप स्थित सेन्त सेरगियस आश्रम के पास एक गाँव में बचपन व्यतीत हुआ। माईकोव का सम्बन्ध अभिजात वर्ग से था। उनके पिता चित्रकार एवं माता लेखिका थीं। माईकोव के घर को कलाकारों, लेखकों तथा संगीतज्ञों के इकट्ठा होने एवं कला सम्बन्धी विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक आदर्श स्थान समझा जाता था। सन् 1841 में अपोलोन माईकोव ने सेन्त पीतरबर्ग्स विश्वविद्यालय के विधि विभाग से स्नातक की डिग्री प्राप्त की, जहाँ उन्होंने गम्भीरतापूर्वक ग्रीक भाषा, रोमन इतिहास तथा साहित्य का अध्ययन किया। गीति काव्य तथा प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण के अतिरिक्त माईकोव ने दार्शनिक एवं ऐतिहासिक विषयों पर भी कविताएँ लिखीं।

स्नान करती युवतियाँ

बड़ा ही प्यारा है वह चाँद, चाँदनी जिसकी
नहा के जाती हुई चुलबुली हसीनों को
कुछ और, और भी ज़्यादा निखार देती है

बहुत ही प्यारी है, तू ऐ हवा, जो लायी है
लहर सुगन्ध की उनके सियाह जूड़ों से
संदेसा उनके भी आने का साथ लायी है

समुद्र कितना भाता है, ताज़गी जिसकी
कभी छलकती है इन युवतियों के सीनों पर,
कभी महकती है भारी, सियाह जूड़ों में !

1862

सेम्योन नादसोन (1862-1887)

सेन्त पीतरबर्ग्स में सन् 1862 में एक सरकारी कर्मचारी के परिवार में जन्म हुआ। सन् 1882 में पावलोव सैनिक शिक्षालय से शिक्षा प्राप्त करने के बाद सेना में प्रवेश किया।

सेम्योन नादसोन की रचनाओं में 'नरोदनी चेस्तवो' नामक संकट-काल के दौरान प्रगतिशील युवा वर्ग की चित्तवृत्ति की भरपूर अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कविताओं का नायक एक ऐसा बुद्धिजीवी है जो अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता। जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति कारुणिक दृष्टिकोण नादसोन की रचनाओं की मूलभूत विशेषता है। अपने समकालीन बुद्धिजीवियों को वे समझौता करने तथा चलते-चलते बीच में ही रुक जाने के विरुद्ध चेतावनी देते हैं। किन्तु वास्तव में जीवन के प्रति क्रान्तिकारी रूप से वे स्वयं बहुत दूर हैं। नेकरासोव* के जनसम्बद्ध गीति-काव्य की ओर झुकाव होने के बावजूद नादसोन की कविता प्रतिबद्धता से वंचित है। उनकी कृतियों में प्राकृतिक दृश्य-विषयक गीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसकी एक झलक 'गौतम बुद्ध की तीन रातें' व 'गौतम बुद्ध की तीन मुलाकातें' में देखने को मिलती है।

---

* बुर्ज़्वा जनवादी संघर्ष (1861-1895) के दौरान विभिन्न पदों पर आसीन बुद्धिजीवियों का आन्दोलन, जिसने अपने आदर्शों से साहित्य को भी प्रभावित किया। सुप्रसिद्ध रूसी साहित्यकार नेकरासोव, उस्पेन्स्की तथा ज़्लातोव्रात्स्की इसी आन्दोलन से सम्बन्धित थे।

गौतम बुद्ध की तीन रातें
(भारतीय अनुश्रुति)

उस देश में जहाँ का सूरज नहीं कृपण है
ना अपनी ऊष्मा में ना अपनी रोशनी में
चावल की लहलहाती निःशब्द क्यारियों में
गंगा का नील पानी बहता है धीमे-धीमे
निश्चल तुषार तल पर—
जलती सदा जहाँ हैं
घाटी की रंग-बिरंगी चादर पे हिम-शिखाएँ—
था एक दुर्ग जिसकी
दीवारें ऊँची-ऊँची
डूबी हुई थीं मानो कुंजों में उपवनों में,
मरमर से वह बना था,
थे स्तम्भ शिल्प-कौशल के जागते नमूने
औ' पौरियों तलक पर थे रेशमी गलीचे,
चारों तरफ़ छतों पर छज्जे बने हुए थे,
फाटक पे श्वेत अजगर,
ताक़ों पे देवताओं की मूरतें सजी थीं
नदिया का मोड़ होकर तिरछा चमक रहा था
जैतून औ' सरौ के पेड़ों के बीच में से
मन्दिर की छत भी झिलमिल-झिलमिल चमक रही थी
औ' दुर्ग के परे से दिखलायी दे रही थी
धुँधलाई-सी वह नगरी
इक देश कपिलवस्तु की थी जो राजधानी
जीवन गुज़र रहा था आराम से वहाँ पर
बस साँस ले रही थी प्रकृति मात्र खुलकर
प्रकृति मात्र खुलकर बस खिलखिला रही थी
बारह महीने केले के पेड़ काटते थे
अपने फलों की बखिया
शाखों पे उनकी बन्दर
ऊधम मचाया करते
बारह महीने सुन्दर-सुन्दर-से फूल खिलते
थी मल्लिका यहाँ पर,

थी बेल इश्क-पेचाँ की रेंगती वहाँ पर
अपने में सिमटे-सिमटे थे नारियल के पत्ते
धरती पे यूँ झुके थे
इक जाल-सा गुलाबों ने मानो बुन दिया हो
थे गुलशबी के फूलों के ताज भी दमकते,
और लाल हो चले थे अंगूर के भी गुच्छे
मखमल की तख़्तियों पर
डूबी हुई थी सारी
नदिया कुमुदनियों की भीनी महक में मानो
चकमाक की ढलानों पे दिन भी मानो अपनी
किरणों की आग धीमी करता हुआ चला था—
ऊषा से रंग लेकर शबनम के जैसे ठण्डे
छींटे उड़ा रहा था
ठिठुरन में रात्रियों की घनी घास में घुसे थे
कभी इस तरफ निकलकर कभी उस तरफ निकलकर
अपने खनकते सुर में चिल्ला रहे थे कीड़े
चिपटे हुए थे कम्पित पत्तों से सारे कीड़े,
सोये हुए-से पौधे अँधियार में धुएँ की
लहरें उगल रहे थे,
औ' झिलमिलाती नदिया के पास अधजगी-सी
लहरों पे जगमगाये ही जा रहा था जुगनू···
प्रज्वलित होने लगती हरियालियों में अक्सर
छाया किशोर की-सी
सुन्दर गठन का लम्बे-से क़द का था वह लड़का
कन्धों से एड़ियों तक डाला था इक लबादा
सूरज ने ढाँप दी थी अपने सुनहरेपन से
गालों की सारी लाली
यौवन का और बल का अतिरेक झाँकता था
उसके सुडौल तन से
रहता था वह अकेला
आकर वह लेट जाता जैतून के तले औ'
सोचों में डूब जाता,—फिर खेलने-सा लगता···
कभी औंधा हो नदी पर, किसी खोज में हो मानो
वह था निहारता तल

जो है रेत बिखरी उसको
कहीं नीले धुंधलेपन में किसी मौज में गुंधे-से
हैं तरह-तरह के पौधे
कहीं उड़ चला अचानक कोई तोता सिर के ऊपर
मानो निमन्त्रण-सा कोई उसको दे रहा हो
कभी शब्द मीठे-मीठे किसी गुल मचाती चिड़िया
के कान में सुनाता
कभी कँपकपा-सा उठता, कभी दहकने-सा लगता
किसी सोच में अचानक घने वन में जा पहुँचता
कभी ग़म में डूब जाता कभी यूँ ही हँसने लगता···
भला कौन है वह आखिर—उसे खुद पता नहीं था
सदा छाया रहता उस पर किसी राज का अँधेरा
यहीं खेला बचपने में
यहीं रह के उसके मन में नयी चेतना-सी जागी···
यहीं नौकरों में घिरकर थी गुज़ारी ज़िन्दगी भी
कि हरेक उसकी इच्छा
सदा पूरी होके रहती
कि तरह-तरह के भोजन उसे ला के पेश होते
कि भरा हमेशा रहता था मय से उसका प्याला
बिना डर वह रह रहा था, जो चाहता सो करता
न था उसमें इतना साहस
कि हदों को पार करता—जो हदें थीं घूमने की
कि जो राज की थी सीमा
कि निषिद्ध था जो उसको कभी भंग कर न पाता
यह कह गया था उससे कि वह कर रहा है पूरी
किसी दूसरे की इच्छा···

1885

गौतम बुद्ध की तीन मुलाकातें

नेपाल के मुखियाओ, तुम्हें मैंने बुलाया है
सम्राट के नाते भी, एक बाप के नाते भी।

क़िस्मत ने जो सौंपा था बेशकीमती मोती
ढलती हुई आयु में ही जो ताज में शोभित।
वह फूल खिला, गंगा-किनारे जो उगे हैं
उन सारे गुलाबों से भी रँग-रूप में बढ़कर।
यह श्येन उड़ा बाक़ी सभी श्येनों से ऊँचा
द्युतिमान है ये नभ के सभी तारों से ज़्यादा
सिद्धार्थ गठन में तो है देवदार सरीखा
है खूब निशाना भी धनुष-बाण में उसका।
पर दिल को डसे जाता है अनजाना-सा एक ग़म
रहता है दुखी, जैसे मुहब्बत का हो क़ैदी
सहमा-सा है, राजाओं के रंजन से अलग है
मायूस-सा, खामोश-सा रहता है अकेला
कुछ देखता रहता है किसी खोज में जैसे
थककर भी दुखों का कोई उत्तर नहीं पाता
वह दर्द जो एक बोझ-सा सीने पे बना है।
कई बार दुखी हो के उदासी से यह चाहा
देखूँ तो सही, उससे यह मालूम करूँ तो
वह दर्द है क्या जिसका हुआ आज यह साहस
सिद्धार्थ के माथे पे है किस दर्द की छाया?
मैंने कहा : "बलवान पवन-जैसे हैं घोड़े
जिनसे हैं भरे अश्वगृह सारे हमारे।
कह दूँगा कि मदिरा से लबालब हों प्याले,
नर्तकियों को, दासों को मैं कर लूँगा इकट्ठा।
बिखरा दूँगा पशुओं को मैं अँधियारे वनों में
तू सीख सके अश्वों पे बाणों के सहारे
किस तौर मिला करती है रणभूमि में ख्याति
मत भूल कि एक रोज़ तू सम्राट बनेगा।"
और वह यह कहा करता है उत्तर में : "पिताजी,
अच्छा नहीं लगता है बिगुल मुझको शिकारी।
इक दुख से है मुरझाई हुई आत्मा मेरी
जंजीर के बोझे तले घुन लग गया मन को।
चिन्ता है मुझे और, क्षमा करना पिताजी,
मुझको है लगन, फूटती ऊषा की किरण जब
भर देता है सुर्खी-सी भला कौन गगन में?

किसने रचा संसार को, मैदान को, वन को ?
क्या सच में बहुत सारे हैं नभनील में तारे ?
मौजूद है जीवन कहीं बादल के परे भी ?
सुनता हूँ जो तूफान में वह किसका कण्ठ-स्वर ?
रातों में छवि किसकी नजर आती है मुझको ?

इक नूर में लिपटा हुआ मानो वह खड़ा था
ढलते हुए सूरज पे नजर उसकी टिकी थी
सागर हो अतल मानो, था गहराई में ऐसा
सोचों में किन्हीं डूबा हुआ आँख का पत्थर।
बन-बनके लहरदार-सा केशों का अँधेरा
माथे पे से होता हुआ काँधों पे गिरा था।
महसूस हुआ यूँ कि कहीं पीठ के पीछे
मानो कि हों इक आग में जलते हुए दो पंख···
उस वक़्त से आशंका ने आ घेरा है मुझको
जिसने मुझे पहुँचाया है दुख कितना न जाने
ऐसा न हो सहसा कि वो एकान्त को चुन ले
तरजीह कहीं दे दे उसे राजमुकुट पर।
ऐसा न हो इक रोज वह कर्त्तव्य भुलाकर,
रुतबे को छोड़-छाड़कर, परिवार को तज के,
जंगल के अँधेरों में, बियाबान जगहों में
बेनाम किसी बुद्ध की वह खोज में निकले।

1885

कोन्स्तन्तीन बलमोन्त (1867-1942)

ब्लादीमीर प्रान्त के एक सुजात परिवार में 1867 में जन्म लिया। 1886 में मास्को विश्वविद्यालय के विधि संकाय में दाखिला लिया, किन्तु विद्यार्थी आन्दोलन में भाग लेने के कारण वहाँ से निष्कासित हुए। कविताओं का पहला संकलन 1890 तथा दूसरा 1894 में प्रकाशित हुआ। इन पुस्तकों में संकलित कविताओं में जनता के दुखों व बलिदान का ऐसा चित्रण मिलता है, जिसे परवर्ती जनकाव्य का प्रतिरूप समझा जाता है। शीघ्र ही बल्मोन्त ने प्रतीकवादी कवियों के अगुआ का स्थान प्राप्त किया। शताब्दी के मोड़ पर बल्मोन्त की चार और पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उन्होंने संसार के विभिन्न देशों की यात्राएँ कीं, जिनका वर्णन उनकी कई पुस्तकों में मिलता है। वे 1905 की क्रान्ति के प्रति सहानुभूति रखते थे (इस बात का आभास उनकी 'प्रतिशोधी के गीत' नामक पुस्तक से होता है)। बल्मोन्त ने पश्चिम व पूर्व की विभिन्न भाषाओं से अनुवाद किये। 1921 में वे फ्रांस चले गये और बड़ी गरीबी में जीवन व्यतीत किया। 1942 में पेरिस के समीप ही उनकी मृत्यु हुई।

माया

तत् त्वम् असि—वह तू है।
(भारतीय मनस्विता की आधारशिला)
जिसे वास्तविकता का ज्ञान हुआ। वही दुख से ऊपर हो गया।
श्री शंकराचार्य

कहीं गहरी खाइयों में कराह रहे थे चीते
चम्पक जो इक दफा ही खिलता है एक युग में
पर्वत की चोटियों पर ऐसे महक रहा था मानो नशे में धुत हो
और चाँद भी चटानों के पार जा के लगता था जैसे बुझ गया हो।

अँधियारी-सी गुफा में जादू जगानेवाला,
मुर्दों से बढ़के पीला, सोचों में गुम था योगी
कुछ बुदबुदा रहा था, प्रभुत्व झांकता था
देवत्वपूर्ण चेहरे के सारे लक्षणों से।

वह मन्त्र पढ़ रहा था, वह कर रहा था पूजा
पूजा से जब वह निबटा, मानो हो कोई सपना
आँखों के सामने कुछ आने लगे नज़ारे
रजनी की स्तब्धता में फिरने लगे नज़ारे।

छाया भी, जानवर भी, जनता भी, देवता भी
अवकाश भी, समय भी, उद्देश्य औ निमित भी
उल्लास की तड़क भी, हानि का झुटपुटा भी
क्षण-भर स्वयम् मरण भी, बचपन का पालना भी।

कपड़ा कहीं असीमित, कहीं बिना फ्रेम फोटो
कहीं अनगिनत 'अहं' की है शत्रुता के जमघट
चिरजीवी ब्रह्मा से कहीं टूटने का तम है,
कहीं है बला भयानक, कहीं स्वप्न ज़िन्दगी के।

उड़कर कहीं गगन में हैं आन पहुँचे पर्वत
ढह-ढहके गिर रही हैं चट्टान पर चट्टानें
कल-कल, कहीं है ठपठप, विनती, कहीं मलामत
कहीं दौड़ते हज़ारों पहियों की गड़गड़ाहट।

सरपट हैं, ज्यों हों पागल मानव भी, देवता भी
"माया ओ माया, झिलमिल करता हुआ यह धोखा
अज्ञानी प्राणियों का जीवन है प्रेत-जैसा
योगी को माया, जैसे निर्जीव, मूक सागर।"

ओझल हुए नज़ारे पर्वत की चोटियों पर
शाखों के बेल-बूटों में थरथरा रही थी हल्की हवा निरन्तर
कहीं गहरी खाइयों में चीते कराहते थे
चम्पक वह चिरस्थाई मुरझा चुका था अब तक।

1899

भारतीय प्रकरण

जैसे आकाशों की लाली, लाल नहीं हो जिसका रंग
जैसे लहरों के स्वर भिन्न, परस्पर होते एक मगर हैं
जैसे हों वे स्वप्न, जिन्हें दिन के उजियालों ने जन्मा हो
जैसे चारों ओर अगन के, धूमिल-धूमिल धुएँ की छाया
जैसे हो प्रतिरूप सीप का, मोती जिनमें साँस ले रहे
जैसे स्वर, जो सब तक पहुँचे, स्वयं तलक जो पहुँच न पाये
जैसे जल-धारे के ऊपर उजले-उजले झाग जमा हों
जैसे फूट के तलछट में से, कमल उगा खिल ऊपर आया
ऐसे ही जीवन भी मानो पथ-भ्रष्ट पुलकों सँग अपने
पथ-भ्रष्ट आभा सँग अपनी, सपना और किसी सपने का।

भारतीय मनस्वी

ज्यों सुनहरा फल, कि जो पतझड़ में पक जाने के बाद
आन गिरता है धरा पर घास के तिनकों के बीच,
आज मैं भी वन के बहरा, अन्धा, गूँगा इस तरह
चल रहा हूँ, चल रहा हूँ बिन उठाये अपना शीश

है यही बस पुतलियों में, है यही बस कान में
वन के मूरत हो गयी निःशब्द मेरी आत्मा,
भिनभिनाहट मक्खियों की हाथियों की गर्जना
बेखबर इनसे पड़े थे मेरे निश्चल नैन-नक्श।

मनस्वी की भाँति मैं करता रहा बीते युगों से बात
और उसके बाद आदिम सादगी को मानो लौटा दी हो अपनी आत्मा
और फिर निःशब्द मानो हो गया हूँ ब्रह्मा में मैं लीन
हो गया हूँ लीन मानो एक शाश्वत रूप में।

चार ही हों इन्द्र-धनु छाये हुए ब्रह्माण्ड पर
चार स्तर उच्च आशाओं के जिसके पास हों,
वह बना सकता है चंचल-सी नमी से भी रवे
देख सकता है वह दुनिया बिन उठाये पुतलियाँ।

इवान बूनिन (1870-1953)

वरोनिझ के एक दरिद्र किन्तु सुजात परिवार में बूनिन का जन्म हुआ। शिक्षा घर पर ही प्राप्त की। युवावस्था में कई समाचारपत्रों के लिए कार्य किया। उन्होंने जीवन के आरम्भ में ही कविताएँ लिखनी शुरू कर दी थीं। गद्य की ओर भी ध्यान दिया। शती के मोड़ पर बूनिन की गणना एक प्रख्यात कवि तथा लेखक के रूप में होने लगी। उनकी कविताओं और गद्य-रचनाओं की विषय-वस्तु रूस की धराशायी होती हुई वह पुरानी सामाजिक व्यवस्था है जिसका आधार वहाँ का अभिजाततन्त्र तथा जमींदारी थी। बूनिन उस आधुनिकतावाद के विरुद्ध थे जो अपनी राह में आनेवाली हर उस पुरानी वस्तु को समाप्त कर रहा था जिसे बूनिन बहुत प्यार करते थे। उनका विश्वास था कि क्रान्ति से किसी का भला नहीं होगा। क्रान्ति के कुछ ही दिन बाद वे रूस छोड़कर फ्रांस चले गये। उसके बाद उन्होंने जो कुछ लिखा वह लगभग सारा-का-सारा अतीत से सम्बन्धित था। उनकी ऐसी कृतियों में उनके विचारों का केन्द्र-बिन्दु उनकी मातृभूमि और उसका अमर सौन्दर्य रहे। दूसरे महायुद्ध में नाज़ियों पर सोवियत संघ की विजय से उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। बूनिन की मृत्यु पेरिस में हुई।

अग्नि

मैं शक्ति दुष्टा के हाथों घायल हुआ हूँ, अन्धकार में पड़ा हूँ
पड़ा हूँ ऐसे प्रतीक्षा में, न चलना सम्भव, न बोल पाना :
कि जा रहे, गुनगुना रहे हैं खुदी हुई क़ब्र पर से होकर
ये लोग ले जा रहे हैं अग्नि कि मेरा लेखा बता रहे हैं।

कि बजती ही जा रही हैं ढालें जो मुझको घर पर बुला रही हैं
कि शतमुखी सिसकियों में ढलने लगी है अवसन्न चीख मेरी

मगर मैं बिलकुल दुखी नहीं हूँ कि अग्निरानी सुवर्णपंखी
तुम्हीं बचाओगी बढ़ के मुझको कि दूर अन्धकार से करेगी।

ऐ भाइयो मेरे देख लेना, ऐ मित्रो मेरे, ऐ मेरे मित्रो
कि कैसे धूतुक बजा के भगवान मेरी अग्नि ग्रहण करेगा
सुनहरे बख़्तर में झिलमिलाता।

ऐ शोक, रोती-सिसकती बहनों के देख लेना
कि भेंट में मुझको ईश्वर ने अपना लिया है जिससे
चमकते दक्षिण में मुझको जीवन की भेंट दे दे।

1903-1906

भाटा

हैं तपते झागों में गोल पत्थर,
लहर चमकती वहीं पे पहुँची;
समुद्र के पार से उभरते शशि की शक्ति
लहर को मानो घसीटती है।

ये नारियल के वनों के तम में
हैं खम्भे दीपित, औ साये टूटे
कि झाँकती है वह चाँदनी में, कि झाग में एक लहर हो मानो,
झपट रही है रहस्यमय-सी पुकार पर जो।

वह पल भी आयेगा, सबसे ऊँचे शिखर पे पहुँचेगा चन्द्रमा जब
वह आन पहुँचेगा मेरे सिर पर
वनों को भर देगा चाँदनी से
कि नग्न कर देगा काले बेजान पत्थरों को

यह विश्व जब जम के होगा पत्थर
तो मैं अकेला निकल के देखूँगा
एक बियाबान वन में बैठे
तुला के अन्दर विराजे बुद्ध को।

28.6.1916

हिन्द महासागर

तेरी भँवरों की कालिमा ऊपर
जल रहे थे चमकते ज्योतिष्पिण्ड
सावनी बढ़ रही थी बोझिल-सी
मूक बारूद की ज्वाला को,
रूप देते हुए धमाकों का।

हमको अन्धा बना रही थी वह
तेज़ उजाले में हम थे सहमे हुए।
नीली लपटों का जाल-सा मानो
बह रहा था सरकती लहरों पर।

तू था गहरा, था शोर करता हुआ
जल रहा था, उफन रहा था तू।
एक तारे से दूजे तारे तक
लड़खड़ा-सा रहा था कोहरा भी।

मानसूनी हवा के शोलों से
लहरें टकरा रही थीं आपस में।
और हीरा-सी पूँछ बिच्छू की
थी विचल तेरी कालिमा ऊपर।

13.11.1916

वलेरी ब्रयूसोव (1873-1924)

मास्को में एक व्यवसायी परिवार में जन्म हुआ। पितामह भूसक्त दास थे, जिन्होंने व्यापार से इतना पैसा कमाया जो उनको दासता से मुक्ति दिलाने के लिए काफी था। ब्रयूसोव के पिता जनवादी कवियों के साथ सहानुभूति रखते थे और चेरनिशेव्स्की तथा पिसारिएव-जैसे कवियों की रचनाओं के प्रशंसक थे। ब्रयूसोव की शिक्षा-दीक्षा उन्हें नास्तिक बनाने तथा विज्ञान का आदर करने के योग्य बनाने के लक्ष्य को सामने रखकर की गयी। स्नातक की डिग्री उन्होंने मास्को विश्वविद्यालय से प्राप्त की। जीवन के प्रारम्भिक चरण में ही उन्होंने अपने आपको लेखन के लिए समर्पित कर दिया। 1894-95 में उन्होंने 'रूसी प्रतीकवादी' नामक चयनिका तीन भागों में प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने मूलतः अपनी कृतियों को स्थान दिया। शती के मोड़ पर उनकी गणना जाने-माने प्रतीकवादी कवि के रूप में होती थी। रहस्यवाद की ओर प्रतीकवाद के आम झुकाव के बावजूद परिपक्व अवस्था में ब्रयूसोव के काव्य सम्बन्धी विचार ठोस और यथार्थवादी हो चुके थे। क्रान्ति के प्रारम्भिक क्षणों से ही उन्होंने सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को सराहा और सोवियत सत्ता का समर्थन किया। 1919 में उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी में प्रवेश किया और उसके सांस्कृतिक व शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। जन-साधारण की सृजनात्मक क्षमताएँ, जो प्राकृतिक शक्तियों को अपने संकल्प के आधीन करने में समर्थ हैं, वह महत्त्वपूर्ण विषय है जो ब्रयूसोव की कृतियों की आधारभूत विशेषता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के रंग में

मेरे बच्चे, जब मैं लाता हूँ खिलौने तेरे पास
जानता हूँ हो गयी क्यों बदलियाँ मोती भरी।
छेड़ती है लाड़ से फूलों को पश्चिम की हवा
मेरे बच्चे, जब मैं लाता हूँ खिलौने तेरे पास।

मेरे बच्चे, जब भी देता हूँ मिठाई मैं तुझे
जानता हूँ घुल गया कैसे गुलाबों में शहद।
हो गये शक्कर से मीठे फल भी अम्बर के तले
मेरे बच्चे, जब भी देता हूँ मिठाई मैं तुझे।

चूमता हूँ, मेरे बच्चे, जब तेरी अँखियों को मैं
जानता हूँ, क्यों सवेरे इतना निर्मल है गगन।
झिलमिलाते ताड़ पर लहरा गयी ताजी हवा
चूमता हूँ, मेरे बच्चे, जब तेरी अँखियों को मैं।

निकोलाई रेरिख़ (1874-1947)

निकोलाई रेरिख का जन्म सेन्त पीतरबर्ग में 1874 में हुआ। सेन्त पीतरबर्ग कला अकादमी में चित्रकारी की शिक्षा प्राप्त की। कला-जीवन का श्रीगणेश प्राचीन रूसी व स्लावी ऐतिहासिक स्मारकों के चित्रण से हुआ। तत्पश्चात तिब्बत, मंगोलिया एवं भारत की ओर आकृष्ट हुए तथा हिमालय के रुचिकर परिवेश ने उनका मन मोह लिया। सन् 1930 में पत्नी येलेना निकोलायेव्ना सहित भारत आये और फिर यहीं के हो गये।

रेरिख की प्रतिभा केवल चित्रकारी तक ही सीमित नहीं थी। वे एक सामाजिक कार्यकर्त्ता, वैज्ञानिक, दार्शनिक होने के अतिरिक्त एक लेखक एवं कवि भी थे। भारत के प्रति, जहां उन्होंने अपने जीवन के लगभग 20 वर्ष व्यतीत किये, उनका रुख सम्मान व प्रेम से परिपूर्ण था।

निकोलाई रेरिख का देहान्त 1947 में भारत में ही हुआ। अन्तिम संस्कार भारतीय रीति के अनुसार सम्पन्न हुआ तथा उनके पार्थिव अवशेषों को हिमालय की ऊँची चोटियों पर दूर-दूर तक फैला दिया गया।

लक्ष्मी-विजयिनी

लक्ष्मी, सुखदायी है रहती एक उपवन में
जेन्त ल्हामो है हटकर पर्वतों से पूरब में
है श्रम अनन्त उसका। बस सजाया करती है
सात चादरें अपनी
जानते हैं यह सब ही
लक्ष्मी, सुखदायी का सब ही मान करते हैं।

एक बहन भी है उसकी 'शिवा ताण्डवा', जिससे
सारे लोग डरते हैं। दुष्टा है, भयंकर है,

वह बड़ी विध्वंसक है। बस विनाश करती है।
ओह त्रास! आती है पर्वतों के पीछे से
'शिवा ताण्डवा' जिस पल। लक्ष्मी के मन्दिर की
ओर बढ़ती आती है। आन पहुँची चुपके से
शान्त कर स्वर अपना, चीखकर बुलाया है
उसने लक्ष्मीजी को।

चादरों को लक्ष्मी ने एक ओर रक्खा है
और इस बुलावे पर बाहर आ गयी है वह
रमणीय, मनोहर है तन खुला-खुला उसका
आँखें उसकी हैं मानो एक अथाह सागर-सी
काले-काले कुन्तल हैं, नाखून अम्बरी रंग के,
वक्ष और काँधों के चारों ओर छिड़की हैं
बूटियों की खुशबूएँ। लक्ष्मी नहा-धोकर
हो गयी है निर्मल और दासियाँ यूँ लगती हैं
मानो बाद वर्षा के मूरतें अजन्ता की।

है बड़ी भयंकर-सी 'शिवा ताण्डवा' किन्तु
नम्र मुद्रा तक में भी
श्वान-जैसे जबड़ों में हैं बड़े-बड़े कीले
हैं बदन पे बेढंगेपन से केश उग आये
तपते लाल मणियों के बावजूद भी शायद
'शिवा ताण्डवा' दुष्टा कुछ सँवर नहीं पाती।
शान्त कर स्वर अपना लक्ष्मी से वह बोली :
"तेरा बोलबाला हो, लक्ष्मी बहन मेरी!
सुख रचा बहुत तूने
और बहुत समृद्धि भी
ज्यादा ही परिश्रम से
काम है किया तूने। शहर भी रचे तूने
और रची हैं मीनारें। मन्दिरों को सोने से तूने ही सजाया है
तूने ही खिलायी है उपवनों से यह धरती
चीज जो भी सुन्दर है, उससे प्यार करती है
तूने ही अमीरों को दानी भी बनाया है
रंक भी रचे तूने वह जो दान लेते हैं

फिर भी खुश वे रहते हैं
तूने ही बनाये हैं शान्तिमय व्यापारिक
और सब भले बन्धन
तेरी सोच का फल हैं सारी भिन्नताएँ वे
जिनसे लोग पुलकित हैं
तूने आत्माओं को भर दिया है गौरव से
चेतना रुचिकर से
तू विशाल-हृदया है
होके खुश बनाते हैं लोग वस्तुएँ जिनमें
मिलती है झलक उनकी
तेरा बोलबाला हो,
मौन देखा करती है लोगों के जुलूसों को
अब नहीं बचा कोई काम तेरे करने को
श्रम बिन, मुझे भय है, तू न मोटी हो जाये
तेरे नैन सुन्दर ये गौ समान हो जायें
तुझको भेंट देना भी लोग भूल जायेंगे
दासियाँ भी अच्छी-सी तुझे मिल न पायेंगी
ये कढ़े हुए बूटे गडमड एक दिन होंगे
लक्ष्मी, बहन मेरी, मैं बहुत ही चिन्तित हूँ
एक काम सोचा है तेरे वास्ते मैंने
देख, कितने आपस में हैं घनिष्ठ हम दोनों
अब समय गँवाना है बस क्लेशकर मुझको
जो रचा है मानव ने हम उसे मिटा डालें
लोगों की सभी खुशियाँ टुकड़े-टुकड़े कर डालें
संचित सब व्यवस्थाएँ क्यों न हम निषिद्ध करें
पर्वतों को ढा देंगे, सोख लेंगे झीलों को
भूख को भी, युद्ध को भी फिर रवाना कर देंगे
खाक में मिला देंगे सारे शहर हम दोनों
फाड़ डाल, ओ लक्ष्मी, सात चादरें अपनी
फिर रचाऊँगी मैं भी अपनी सारी लीलाएँ
मैं भी झूम उट्ठूंगी, तेरे पास भी होंगे
ढेर सारे प्रयोजन, इतनी सारी चिन्ताएँ
फिर से कात-बुन लेना चादरें ये तू अपनी
लोग हो के आभारी लेंगे तेरे तोहफ़ों को

इतनी योजनाएँ तू, इतने काम सोचेगी
सब से मूर्ख भी खुद को बुद्धिमान समझेगा,
महत्त्वपूर्ण समझेगा। देखती हूँ, खुशियों के
सारे आँसू जो तुझको भेंट में मिले होंगे
औ' तेरी बहन को भी देखकर खुशी होगी
सोच लक्ष्मी प्यारी मैंने जो विचारा है
कितना लाभकारी है। और तुझे भी तो इससे
किस क़दर खुशी होगी।"

धूर्त थी 'शिवा ताण्डवा'
सोचकर ज़रा देखें कैसी बेतुकी बातें
उसके मन में आयी थीं
हाथ के इशारे से लक्ष्मी ने उसकी यह कल्पनाएँ ठुकरा दीं
तब हिला के दुष्टा ने हाथ और कीलों को
लक्ष्मी को धमकाया,
पर यह लक्ष्मी बोली :
"खुश तुझे मैं करने को सबको दुख नहीं दूँगी
चादरें ये, सुन ले तू, मैं कभी न चीरूँगी : मैं महीन धागे से
सारी मानव जाति को खूब चैन-सुख दूँगी
हर कुलीन घर जाकर दासियाँ जुटाऊँगी
सातों चादरें अपनी खूब ही सँवारूँगी मैं नये नमूनों से
रमणीय नमूनों से, दृढ़तम नमूनों से
और इन नमूनों के माध्यम से पशुओं औ' सुन्दरतम
पक्षियों के चित्रों में, सब घरों में भेजूँगी
निजी नेकदिल जादू।"
लक्ष्मी का निश्चय था।

उस ज्वलित उपवन से 'शिवा ताण्डवा' उस पल
खाली हाथ लौटी थी
जश्न आज हो लोगो !
होके मानो पागल-सी घात में वह बैठी है
कब समय का ताण्डव हो ?
वह क्रोध में अक्सर धरती को हिलाती है
और पैदा होते हैं युद्ध, भुखमरी उस पल

लोग मरने लगते हैं।
फेंकती है लक्ष्मी तब सारी चादरें अपनी
और मुर्दा देहों पर लोग इकट्ठा होते हैं
छोटे-छोटे पर्वों में सारे आन मिलते हैं
लक्ष्मी सजाती है अपनी चादरों को फिर
उन सभी नमूनों से, जो नये हैं, पावन हैं।

1909

सेर्गेई गोरोदेत्स्की (1884)

सेन्त पीतरबर्ग में सन् 1884 में जन्म हुआ। सेन्त पीतरबर्ग विश्वविद्यालय में इतिहास व साहित्य का अध्ययन किया। प्रथम महायुद्ध के दौरान समाचारपत्र 'रूस्कोय स्लोवो' के संवाददाता के रूप में युद्ध-क्षेत्र में काम किया। अक्तूबर-क्रान्ति के बाद विभिन्न सांस्कृतिक एवं शैक्षिक संस्थानों में कार्य करते रहे। मास्को में वापसी के बाद 'इज़्वेस्तिया' के साहित्य-विभाग तथा रिवोल्यूत्सिया थियेटर में काम करते रहे। द्वितीय महायुद्ध के दौरान अनेक कविताएँ व गीत प्रकाशित हुए। सोवियत संघ की विभिन्न भाषाओं से साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के अतिरिक्त कई विदेशी भाषाओं के कवियों की रचनाओं का रूसी में अनुवाद किया।

भारत

पवन वसन्ती घुसी है पतझड़ की खिड़कियों में
झपट रही है, वह उड़ रही है, बुला रही है चले भी आओ
गुलाब की पंखुड़ी, खुबानी की पत्तियों के ये मेघ उस सँग
जो सबसे दुर्बल है उसके कानों में फुसफुसाते हैं :
आ तू बेकस नहीं है बिलकुल।

यह कह रही है पवन : मैं आयी हूँ बर्फ़ के देश,
उत्तरी दूरियों से उड़कर
तुम्हारे पास आयी हूँ कि तुम भी तो देख पाओ इस एक रुख को
भिखारियों के, दरिद्र लोगों, पिटे गुलामों के द्वार जाकर
वह ज़ोर से खटखटा रही है : निकल के आ तोड़ बेड़ियों को,
है सिर पे सूरज।

कि कोहरे-पाले में और लहू में श्वेत उत्तर की दूरियों में
स्वतन्त्र हम आज हो चुके हैं तुम्हारे हाथों में दे रहे हैं
कि तुम जो धीरज से लानती दुख उठा रहे हो
तुम्हारे हाथों में मित्रता का जवान हाथ अपना दे रहे हैं।

धँसी हुई इन सियाह पलकों में सहमे-सहमे-से मोटे दाने
छिपी हुई हैं कढ़े लिबासों में लड़कियाँ, ज्यों पवन बसन्ती
कि अपनी तक़दीर सुन रही हैं
युवा हृदय, श्वेत बर्फ़-जैसा टाट अपना हिला रहे हैं।

वहाँ इन ईखों के बीच अपनी सुखद मगर छोटी झोंपड़ी में
निहारता कोई बूढ़ा बैठा विशाल अम्बर की नीलिमा को
हवा का गुल सुन रहा है सबके लिए कि जो है धरा के अन्दर
गिरे-पड़े हैं जिन्होंने धरती त्याग दी है।
है झुर्रियों में वह हर्ष पंखों की फड़फड़ाहट में जैसे
एकदम मगन हो सूरज।

1922

निकोलाई तीख़ोनोव (1896-1979)

तीखोनोव का जन्म सन् 1896 में सेन्त पीतरबर्ग्स के एक शिल्पकार के परिवार में हुआ। सामाजिक समस्याओं पर चिन्तन व सामाजिक न्याय के लिए निरन्तर खोज उनकी कविताओं के विशेष पहलू हैं। सोवियत संघ के लगभग समस्त भागों का उन्होंने न केवल भ्रमण किया, बल्कि वहाँ की जनता के साथ मिलकर उनकी समस्याओं को समझने तथा उनके समाधान के लिए भरपूर प्रयास भी किया, जिसकी छाप उनकी विभिन्न रचनाओं में पायी जाती है। सोवियत संघ के अतिरिक्त तीखोनोव को अनेक बार विश्व के विभिन्न देशों की यात्रा करने का अवसर मिला जहाँ उनको मात्र एक कवि के रूप में ही नहीं, अपितु शान्ति के लिए निरन्तर संघर्ष करनेवाले व्यक्ति की हैसियत से जाना गया है।

निकोलाई तीखोनोव के चिन्तन का मुख्य केन्द्र पूर्वी विश्व रहा है। पूर्व के देशों में भी भारत ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया। तीखोनोव स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे बचपन से ही बनारस, बीजापुर व गंगा को देखने के सपने देखा करते थे। भारत, पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, चीन, सीरिया इत्यादि देशों की यात्राओं के फलस्वरूप प्राप्त हुए अनुभवों की छाप उनकी कृतियों में स्पष्ट रूप से मिलती है।

समी

[1]

अच्छा भी, बुद्धिमान भी साहब 'समी' का है
चाबुक से सूत देता है अच्छी तरह वह बस।
अच्छा भी, बुद्धिमान भी, साहब 'समी' का है
इन्सान वह 'समी' को समझता नहीं है बस।

वह देखता है उसकी तरफ़ एक आँख से
कहता नहीं है बस वह कभी धन्यवाद उसे।
करता है पानी गर्म 'समी' शेव के लिए,
खच्चर की जीन कसता है साहब के वास्ते।
गर झाड़-पोंछ में हो कहीं भूल 'समी' से
साहब है रखता सबकी खबर विष्णु की तरह।
साहब पिटाई करता है फिर जोर-शोर से
तलवों में मारा करता है कस-कस के बैंत वह।
चलता है दौड़ता हुआ बाज़ार में 'समी'
बढ़ता है उसकी चाल में विश्वास हर बरस
बाप उसका तेजचाल कहीं बीजापुर में था।

[2]

यह वर्ष दुष्ट था बहुत—एक काले नाग ने
खच्चर को डस लिया जो बड़ा हृष्ट-पुष्ट था
उसको, मरोड़ खाये हुए कान जिसके थे।
साहब सुबह सवेरे उठा सो के जिस घड़ी
दुष्टात्मा ने फूँक दिया टेलीफोन में।
उसको इधर पड़ी थी कि अखबार है कहाँ?
घड़ियाल ने घमण्ड से कर दी थी घोषणा
लेकिन न तो 'समी' था, न अखबार ही कहीं।
देना पड़ा पियाला किसी और को उसे
ताकि वह पानी गर्म करे शेव के लिए,
औ सबसे बढ़के आज तो घटना घटी थी यह
खच्चर को आज जाना पड़ा खाली पेट ही।

[3]

रेवड़ से बकरियों के बिछुड़ जाये ज्यों कोई,
हफ़्ता गुज़र गया तो कहीं आया तब 'समी'।
था भूख से निढाल, बदन पर थे चीथड़े,
सोने पे जैसे मुहर हो, था गूमड़े का नील।
यूँ तो वह देखा करता था साहब की एक आँख
पर आज दोनों आँखें नज़र आ गयीं उसे।
"अब तक कहाँ था तू बता लंगूर दुमकटे?"

साहब ने अपने झूले में एक पेंग-सी भरी।
इक सादगी के साथ 'समी' ने दिया जवाब—
"दाँतों से तेरी बैंत के घबरा रहा था मैं—
जाना तो चाहता था उस स्वामी के पास मैं
जो सब ब्राह्मणों से, है राजाओं से बड़ा।
बिल्ली का अन्धा बच्चा खुली छत पे जैसे हो
रस्ता मैं घाटियों में कहीं यूँ भटक गया।"
"जन्मा है इसलिए कि मेरे हुक्म पर चले,
उठकर सुबह सवेरे करे पानी गर्म तू,
जाये तू डाकखाने, रखे अस्तबल को ठीक,
स्वामी हूँ सिर्फ़ मैं तेरा, बन्दर कहीं के सुन!"

[4]

"रहता है वह तो दूर पहाड़ों के उस तरफ़
जो जा रहे गगन की तरफ़ जैसे सीढ़ियाँ
उस शहर में कि हैं जहाँ ऊँचे भवन बहुत,
लेनिन है उसका नाम, वह
देता उन्हें है रोटी जो हैं भूख से निढाल
चाहे तो भेड़ियों को भी मानव बना दे वह।
साहब बहुत बड़ा है वह आकाश के तले
फिर भी किसी को कुछ नहीं कहता वह बैंत से।
यूँ तो है खानदान से ऊँचा बहुत 'समी'
उसके लिए वह छोड़ दे पर खानदान भी,
दे पानी गर्म करके उसे शेव के लिए,
दौड़े वह डाकघर, करे खच्चर को साफ़ वह।
सेवाओं के जवाब में 'लेनिन' भी उसको दे
बुद्धि भरी नसीहतें और ढेर से रुपे,
जितने किसी ने दुनिया में अब तक दिये न हों—
सब 'साहबों' को नष्ट ही कर देगा अब 'समी'।"

[5]

"तूने कहाँ से सुन लिया यह सब करमजले?"
साहब यह कहके हँस पड़ा एक धूर्तता के साथ।

"खतरे की बात है जहाँ होना ये गोरा रंग,
अमृतसरी दुकानों के जमघट में ही कहीं
बनियों की मुट्ठियों में है सारा जगत जहाँ,
वे जानते हैं खूब, हैं किसके विचार क्या,
घोड़ों का कैसा भाव है रूहेलखण्ड में,
कितना है बुद्धिमान वह, लेनिन है जिसका नाम।"
"अच्छा, निकल यहाँ से,"—यह अंग्रेज ने कहा।
निकला 'समी' वहाँ से विजेता की शान से,
साहब न निकला लंच भी लेने के वास्ते
ताला लगा के बन्द शयन-कक्ष में रहा।

[6]

घुटनों के बल खड़ा हुआ था इस समय 'समी'
चुपचाप-सा था, छोटा-सा, था कुछ कठोर भी
लेनिन के गुणानुवाद में डूबा-सा था 'समी'
लेनिन जो उससे दूर भी, दुर्बोध भी था जो,
ताकि वह उसकी छोटी-सी विनती यह सुन सके,
अपने शहर में जिसमें पहुँच पाये ना कभी।
पक्षी जो ताप-दीप्ति से ज्यादा ही उड़े तेज
बारिश में भीग जाय वह इतनी हों बारिशें
हाथी कुछ ऐसा भागे कि दम तोड़कर रुके,
यह 'साहबों' की गाड़ी जो है आग से भरी
शीशे की तरह टुकड़े हो तूफ़ान वह उठे।

[7]

लेनिन था उससे दूर बहुत, पर उसी समय
मानो 'समी' के कान में स्वर सुन कोई पड़ा।
बच्चा खड़ा हुआ था ज्यों घुटनों के बल अभी
थीं आँसुओं से तरबतर आँखें बड़ी-बड़ी।
वह जोर-जोर सहजता से कूदने लगा
जैसे कि लेप रक्खी हो मक्खन से बाल्टी।
उसके सियाह जिस्म पर छिड़की थी साँझ ने
मानो महकती खुशबुओं की कोई बाल्टी।

जैसे कि अमृतसर में जन्म ले लिया था फिर।
इस बार किन्तु जन्मा था मानव के रूप में—
अब कोई क्रूर 'साहब' उठाने न पायेगा
अपनी वह मोटी बेंत उसकी खाल खींचने।

1920

अलेक्सेई सुरकोव (1899-1983)

'जब बन्दूकें बोलती हैं तो रागिनियाँ चुप हो जाती हैं'—यह पुरानी कहावत है। हमारे दुखों-भरे युग में बन्दूकें बहुत कुछ बोलती रहीं, किन्तु रागिनियों ने चुप होने से इनकार कर दिया।

तुम आज इतनी दूर हो
सागरों से और हिम के सागरों से भी परे
मेरी पहुँच से दूर हो तुम एक तारे की तरह
कि मौत से क़रीब हो—है कुछ क़दम का फ़ासला !

द्वितीय महायुद्ध के दौरान यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि लोगों ने इसके रचयिता की ओर ध्यान ही नहीं दिया, मानो वे उसे लोकगीत के रूप में गाते रहे। यह गीत अलेक्सेई सुरकोव की लेखनी का चमत्कार था जो उन्होंने रणभूमि से अपनी पत्नी को समर्पित किया था। सुरकोव की प्रथम पुस्तक 1930 में प्रकाशित हुई। उनके गीति-नायक की कल्पना संसार के तूफ़ानों से बाहर, उनकी अपनी पीढ़ी के जीवन की समस्याओं से परे नहीं की जा सकती। रूसी गृह-युद्ध तथा द्वितीय महायुद्ध में भाग लेने के फलस्वरूप उनकी रचनाओं में बहुधा मृत्यु का उल्लेख मिलता है। किन्तु उनके स्वर से कभी निराशा का आभास नहीं होता। उनके अनुसार, वास्तव में साहसपूर्ण काव्य ही मानवतापूर्ण काव्य कहलाये जाने का अधिकारी है। कवि के मतानुसार जब बन्दूकें गरज रही हों तब रागिनियों को चुप रहने का कोई अधिकार नहीं है।

दिल्ली के बाज़ार में

चिंघाड़ती तिजारत जोबन पे आ गयी है
दम घोंटती-सी, जलती-सी चल पड़ी हवा भी
लहरा रहा है देखो
बाज़ार में पुराने छापे की कोई कमठी।

बाईं तरफ़ हैं शिवजी
और उस पे वह, वहाँ पर बाईं तरफ़ तो देखो
रानी का योद्धा है—
तगड़ा गुसीला अड़ियल।

तलवार का धनी है
संसार आधा घूमा ऐसा है वह घुमक्कड़,
वह लाल टार्च अपनी
वर्दी की है जलाता।

लपटों में आग की अब आया देश उसका
वह रण पड़ा कि टुकड़े-टुकड़े हुई है धरती।
इक अश्व के खुरों के नज़दीक ही पड़ी है
इक मलगज़ी-सी साड़ी में लाश वह किसी की।

भौंहों के आधे घेरे का मौत ने था खींचा
नाज़ुक-सा एक ख़ाका।
नज़दीक ही लहू की छोटी-सी पोखरी में
बच्चा था टुकड़े-टुकड़े।
मरहूम मिस्टर कर्पलिंग !
इस नन्हें-मुन्ने बच्चे को क़त्ल करनेवाला
नायक वही नहीं है
गुणगान जिसका करती थी लेखनी तुम्हारी ?

भीगी हुई हैं मूँछें तम्बाकू औ' बियर में
सीसे से भी ज़ियादा धुँधलाई-सी हैं आँखें;
ऐसा ही तो तुम्हारा वह 'डेनी डायवर' है
ऐसा ही तो तुम्हारा वह 'टॉमी एटकिन्स' है।

अफ़वाह जो उड़ी है
गर क्रूरता की इनकी
ढाका से चल पड़ी तो नैरोबी आन पहुँची
रंगून में रुकी फिर शंघाई जा के ठहरी।

गोरों का बोझ ढो लो !
आवाज़ एटकिन्स की तुमने उधर लगायी
बेशर्म मँडलियों ने
बर्बाद कर दिया सब, जो कुछ था फूँक डाला।

गोरों का बोझ ढो लो
रेतों में पानियों में।
पर सभी महाद्वीपों की सारी जनता तुमको
अभिशाप दे रही थी।

गोरों का बोझ ढो लो !
सेफ़ों में हीरे ढो लो !
आवाज़ आ रही है शहरों में बैंकों के
धुँधलाये ठोस गढ़ से।
चाबुक को दे के तुमने
स्वतन्त्रता,
दिये थे 'स्वतन्त्रता' के नारे
लोगों को ला के फेंका
है पत्थरों के युग में।

ऐ ग़ासिबो,[1] ऐ धृष्टो,
तुम मौत-आग बोते बढ़ते ही जा रहे थे
और नन्हे-नन्हे गीदड़
पीछे चले तुम्हारे।

रहता नहीं है दुनिया में पाप तो हमेशा।
वह क्रूर, भेड़ियों की चमड़ी पहन के जिसने
मौत और हवा उगाई
वह ग़र्क़ हो रहा है तूफ़ान में स्वयं भी।

आवेश में है तूफ़ाँ
निष्ठुर भी है हँसी भी

1. ग़ासिब—बलात क़ब्ज़ा करनेवाला।

तुम देर से ही जागे
है अब फ़िज़ूल गुस्सा।

ग़द्दार औ' सिपाही
कब देश के सपूतों को नष्ट कर सके हैं
जागे जो उस बिगुल से
सुबह में जो बजा था।

1961

इराक्ली अबाशीद्ज़े (1909—)

इनका जन्म 1909 में सोवियत ज्योर्जिया में हुआ। माध्यमिक शिक्षा समाप्त करके प्रान्तीय राजधानी त्बीलीसी में विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। बहुत छोटी अवस्था में लिखना आरम्भ किया, किन्तु नियमित रूप से इनकी कृतियाँ 1928 से छपनी शुरू हुईं। कविताओं का पहला संकलन 1931 में प्रकाशित हुआ। सोवियत लेखकों के प्रथम सम्मेलन में 1935 में ज्योर्जिया की ओर से प्रतिनिधित्व किया। गीति-काव्य में अटूट विश्वास होने के कारण उनका विचार है कि इसके माध्यम से ही समकालीन मानव के मन रूपी संसार की पूर्ण-रूपेण अभिव्यक्ति सम्भव है। इसी विश्वास के बल पर उन्होंने अपने देशवासियों के उस संघर्ष को समझने और समझाने की ओर ध्यान केन्द्रित किया है जिसका एकमात्र लक्ष्य शान्ति व सृजन से परिपूर्ण एक महान भविष्य का निर्माण करना है। इराक्ली अबाशीद्ज़े की अनेक कृतियाँ भारत को अर्पित हैं। वे स्वयं कई बार भारत-भ्रमण कर चुके हैं।

भारतीय कवियों से

किसी का बुरा मैं नहीं चाहता हूँ
कि खुद युद्ध का मारा संसार सारा।
अगर है तो बस एक यह कामना है
कि जाऊँ मैं ऐसी कवि-गोष्ठी में—

जहाँ आग की जगमगाहट में डूबे
इकट्ठे हों गायक, कविगण जमा हों
कि गीतों की अद्भुत प्रतियोगिता में
निशा धीरे-धीरे सरक-सी रही हो।

वही सब, कि जिनके खनकते हुए सुर
सजग साज को अपने जादू से कर दें
कि हो जिस समय चन्द्र-किरणों की वर्षा,
समूचा जगत अपनी बाँहों में भर लें।

कला-काव्य के इक घमासान रण में
कविगण सभी खूब सज-धज से आयें
कि लाते हुए सामने अपनी प्रतिभा
लजायें, न झिझकें, न वे हिचकिचायें।

मुहब्बत का आदर्श कफ़काज़ी नमक्दा[1]
तुम्हारी धरा पर हम बढ़के डालें
करें आज भारत के वीरों को अर्पित
हम अपने सभी वीरता के तराने।

समेटे हुए स्नेह मन का समूचा
हमारे ये स्वर दूर तक खनखनायें।
हमारी कला के रण-स्थल पे लड़ने
ज़रूर आज 'सरदार' औ' 'महमूद' आयें।

नहीं कोई इक-दूसरे से डरेगा
बढ़ायेंगे हाथों को अँधियार में जब।
लड़ाई में हो 'फ़ैज़' भी आके शामिल
चले आओ मित्रो, इकट्ठा हों हम सब

करे चाँद जब अपनी किरणों की वर्षा,
निरन्तर मगर हल्की किरणों की वर्षा।
धधकते हुए शब्द गाते रहेंगे
नये हिन्द के दबदबे के तराने।

1. भेड़ की खाल से बना वस्त्र, जिसे कोहकाफ़ के पहाड़ी क्षेत्रों में बुरका कहा जाता है।

मिर्ज़ो तुरसूनज़ादेह (1911-1977)

एक ऐसी भाषा के कवि के रूप में ख्याति प्राप्त करना जिसकी काव्य-परम्परा फ़िरदौसी, हाफ़िज़ तथा सादी से जाकर मिलती हो, किसी ताजीकी कवि के लिए कोई कम महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं हो सकती। ताजीक कला के अनुपम जादू ने प्राचीन संस्कृति में अपने लिए एक विशेष स्थान सुनिश्चित कर लिया था। समकालीन ताजीक कवियों ने बड़ी सावधानी के साथ इस धरोहर की रक्षा की है।

तुरसूनज़ादेह का जन्म काराताग़ नामक गाँव में 1911 में हुआ। तुरसून उनके शिल्पकार पिता का नाम था। उनका नाम मिर्ज़ो अर्थात् 'क्लर्क' अथवा 'शिक्षित' रखा गया, जिसका अर्थ था—भूख, हीनता एवं दरिद्रता से मुक्त जीवन की ज़मानत।

विद्या प्राप्ति की खोज में सन् 1930 में मिर्ज़ो पैदल ही निकल पड़े तथा दुशबे पहुँचकर एक अनाथालय में, जहाँ कुछ समय पूर्व एक पाठशाला खोली गयी थी, प्रवेश किया। तत्पश्चात् उन्होंने एक तकनीकी संस्थान में शिक्षा प्राप्त की।

उनकी रचनाएँ सर्वप्रथम 1930 में प्रकाशित हुईं। प्रारम्भिक कविताओं में 'हाफ़िज़' एवं 'रूदाक़ी' की क्लासीकी धरोहर की प्रतिध्वनि बड़ी स्पष्ट है।

सन् 1947 में एशियाई देशों के प्रथम सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस यात्रा के अनुभवों की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति उनकी पुस्तक 'भारतीय गीत' में संकलित गीतों से होती है। निकोलाई तीखोनोव की कृति 'समी' के बाद सम्भवतः पहली बार भारत सम्बन्धी इन कविताओं ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था। इसी पुस्तक के लिए कवि को 1947 में सरकारी पुरस्कार से विभूषित किया गया।

गंगा

रात में चाँद तले दूर चमकती गंगा
दूध की धार ज्यों कोई धरा-वक्ष पे हो।

यूँ चमकती है खड्ग हो वह कोई जंग लगी
अथवा प्राचीन समय की कोई रण-भूमि अमित।

जैसे संन्यासी जो बिखराये हुए बाल सफ़ेद
तज के संसार कहीं और निकल जाता है।

सारी दुनिया के दुखों को तू उठाये जैसे
लेके चुपचाप चली रात के सागर की तरफ़।

शक्त गंगा तू बता किसलिए चुप है इतनी
किसलिए शोर तू करती नहीं सागर की तरह।

किसलिए रात गये चाँद के ताँबे के तले
तू चली जाती है शमशान में मजनू की तरह।

क़ैद में जलती हुई रेत के, बह आती है
और सिर पर भी है जलती हुई झुलसाती हवा।

है कहाँ मन्द पवन तेरी चरागाहों की ?
हैं कहाँ बाग़ तेरे ताज़ा चमेलीवाले ?

छिप गये जा के कहाँ वन तेरे मरकत-जैसे ?
अनगिनत सुर तेरी चिड़ियों के कहाँ हैं आखिर ?

मन की गहराई में तू अथवा छिपा बैठी है
सारी आशाएँ जो बाँधी हैं तेरी जनता ने ?

अपनी जनता के लिए या तू दुखी रहती है ?
अथवा भारत के सभी दर्द सताते हैं तुझे ?

बोल दे आज भलाई के लिए बोल भी दे
खोल दे मुझ पे तेरे मन में छिपे राज़ सभी।

पुष्प-आगम के किसी देश का मेहमान हूँ मैं
तेरी लहरों के बुलावे पे चला आया हूँ।

सबको उपहार दिया करती है अपने तट पर
मित्र हो, शत्रु हो, तू सबका भला करती है।

तेरे वन तेरे लिए मन में अनुराग भरे
तेरे तट फूल समेटे हुए आ पहुँचे हैं।

प्यार को दिल में समेटे हुए तलवार समान
इन्हीं स्रोतों ने दिये चीर पहाड़ी सीने।

नीलिमा भरती है सिसकी लिये तूफ़ान का रूप
है तेरे वास्ते बेकल यह मरूभूमि की रेत।

मुझको लगता है कि पर्वत से नहीं बहती है
साथ हिमखण्डों का बाहुल्य नहीं है लाती।

मुझको लगता है कि ले जाती है तू सागर में
आँसू कृषक के, रुधिर और पसीना उसका।

मुझको लगता है कि लहरों में बजाए मोती
तूने बस राख ही मुर्दों की छिपा रक्खी है।

चाहे खाये-पिये लगते हैं किनारे तेरे
चाहे अच्छी हो फ़सल, तेरी फ़सल तेरी नहीं।

तेरा बेनाम यह मजदूर यह तेरी जनता
मारे ही जाता है बस भूख का दानव इसको।

तेरे वैभव पे जबरदस्ती बना रक्खा है
दुष्ट बदमाशों ने यह स्याह अँधेरा सेतु।

कारवाँ बनके यहाँ रेंग रही हैं हर पल
चिड़चिड़ी धुन्ध में पश्चिम की ये सारी रेलें।

मानो ये चोर हैं—क्या माल भरा है इनमें
यानि रेलों के मोहरबन्द सभी डिब्बों में।

तूने पहले नहीं देखा है तो गंगा अब देख
चोर ने खींच लिया तेरा हृदय सीने से।

वो लिये जाते हैं यौवन तेरे पुष्पागम का
वो लिये जाते हैं फ़सलें तेरे खलिहानों की।

उसने माताओं से छीना है तेरी दूध तलक
उसने छीना तेरे शिशुओं से भी शैशव उनका।

अपने सम्मान को ताकत को जरा याद तो कर
याद कर तू कि इसी धरती का हिस्सा है तू।

फिर से इक बार नदी बन वही वैभवशाली
फिर से आवेश में, आ फिर से उबल, होश में आ।

1947

हैंगिंग गार्डन

जल-दर्पण पर लटका है जो
बम्बई में है ऐसा उपवन
नहीं है सम्भव, नहीं है सम्भव
उसकी सुन्दरता का वर्णन।
कभी तो सारी धूप समेटे
कभी समेटे चन्द्र-छटा को
आठ पहर है झलक दिखाता
हीरे-जैसे निर्मल जल से।
शाखाओं से जीवित जैसे
गजों, सिंहों के बुत दिखते हैं।
पत्तों पर पक्षी चित्रित हैं
मानो चिरकालीन कथा के।
किसके दक्ष, कुशल हाथों ने
जादू का क़ालीन बुना है?

ओस में जैसे हीरे पहने
उपवन सारा ऊँघ रहा है
उपवन दो हैं—एक हरा है
दूसरा उपवन नीला-नीला
इक उपवन ऊँचाई पर है
दर्पण-खाड़ी में है दूजा।

सहसा इक जलपोत विदेशी
पश्चिम से इस दिशा में आया
भारी-भरकम उसका कवच था
टुकड़े-टुकड़े हो गया दर्पण।
इन बेगाने मेहमानों को
तूने बुलाया था क्या भारत ?
अथवा ये सब आये थे क्या
तेरे जल की रक्षा करने ?
निर्मल जल के नील को तेरे
मसल दिया है, कुचल दिया है
तेरे चाँद के सुन्दर मुख को
ढाँप दिया काली छाया से।

1955

अनातोली सोफ़रोनोव (1911—)

मीन्स्क में सन् 1911 में जन्म हुआ। रोस्तोव शैक्षिक संस्थान के साहित्य विभाग में शिक्षा प्राप्त की। द्वितीय महायुद्ध (1941-45) के दौरान सोवियत संघ के समाचारपत्र 'इज्वेस्तिया' के विशेष संवाददाता के रूप में कार्यरत रहे। सन् 1929 में पहली बार उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। 'रुपहले दिन' (1934), 'दोन नदी के ऊपर' (1938), 'यह सब युद्ध में हुआ' इत्यादि उनके सुप्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। जन्म-स्थान से प्यार और शान्ति के लिए संघर्ष उनकी रचनाओं के मुख्य विषय हैं। उनकी लेखनी ने अनगिनत लोकप्रिय गीतों को भी जन्म दिया है। उनकी विभिन्न रचनाएँ विदेशी भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। दो बार लेनिन पदक, एक बार अक्तूबर-क्रान्ति पदक तथा कई दूसरे पुरस्कारों से विभूषित हो चुके हैं।

ऐवरेस्ट

जितनी नजदीक होती हैं ये चोटियाँ
दूर उतनी ही होती हैं ऊँचाइयाँ
जा के देखो जरा तुम हिमालय तलक
भेद सारा यह तुम पर भी खुल जायेगा।

किस कदर ऐवरेस्ट
लोगों के वास्ते था पहुँच से परे
अपने बर्फों के नीचे सुरक्षित रखे
'ममियों' को नहीं, बल्कि लाशें कई।

दूसरे लोग फिर
रास्तों पर कहीं पाया करते उन्हें

इतना होने पे भी, इतना होने पे भी
पंख टूटे नहीं।

छोड़कर दूसरी
जानी-मानी जगहें,
ऐवरेस्ट की तरफ़
बर्फ़ों, चट्टानों पर रेंगते ही चले।

और आ पहुँचे वे
उसकी ऊँचाई पर।
उनको थोड़े समय याद रक्खा गया
फिर भुला भी दिया।

याद की किन्तु इतनी महत्ता नहीं,
वास्तव में महत्ता तो बढ़ने में है,
प्रेरणा में अमित,
और उत्साह में, मन के जलने में है।

लोग इस वास्ते
जा रहे हैं दिशा में हिमालय की फिर
उस तरफ़,
आग बनकर है जलता जहाँ का उदय।

जा रहे हैं मगर जानते यह नहीं
लौटकर भी वे आ पायेंगे या नहीं,
ऐसा होता रहा,
अनगिनत बार होता रहेगा यही।

इसलिए जानना
है जरूरी तुझे,
जितनी नज़दीक होती हैं ये चोटियाँ
दूर उतनी ही होती हैं ऊँचाइयाँ।

दार्जिलिंग/मई, 1980

रेरिख़

मैं अब जाके समझा हूँ
करता रहा क्या यहाँ रहके रेरिख़···
न रंग और न तूली,
न सूर्योदय ही,
वह रहता रहा बस,
यह विश्वास था बस,
समय आयेगा वह
समय आयेगा वह।

तराई से होकर
कि कर पार दलदल,
यहाँ से वहाँ तक
जो चाहे, सो पहुँचे,
यह रोटी का टुकड़ा
भी है एक चिन्ता
कि रोटी बिना भी
तो जीना है दूभर।

पर उसने न चाहा
तराई में जाना,
तराई सहज ही
छिपा लेगी सबको, बचा लेगी सबको
मगर रूस फिर भी
था उसके हृदय में।
अस्पष्ट उसका
वह आकाश अब तक
वे गाथाएँ उसकी
वह वस्त्र मोटा-झोटा,
प्राचीन गिरजों का
वर्षा में गुम्बद···
थे कुछ लोग ज़ाहिल,
अरे, ओह ज़ाहिल!

कि किस्मत ने दी है
जिन्हें उम्र लम्बी।
अत: पर्बतों में
गगन की दिशा में
जहाँ रंग भी हैं, जहाँ तूलिका भी
जहाँ पर वही वस्त्र है मोटा-झोटा,
वहाँ वह हुआ सब
निगाहों के आगे, हो अनहोनी जैसे।
वह सब देखता है तू अपनी नजर से
कि महसूस करता है वह सब स्वयं भी।

ये अवतार भी तो
ये सब भी तो इन्सान होते हैं आखिर:
वही देह भी है वही खाल भी है
वही हड्डियाँ हैं,—
मगर मात्र वे ही
समझते हैं इतना
कि क्या होनेवाला है
अनदेखे औ' आनेवाले समय में।

मैं अब जाके समझा हूँ
करता रहा क्या यहाँ रह के रेरिख
चट्टानों पे चलता हुआ रूस से जो
यहाँ आन पहुँचा !
न बस देखकर ही
न यूँ ही किया उसने विश्वास इस पर
कि दुनिया के आगे प्रगट हो उठेगा
कि चमकेगा ज़ोरों से इक रोज़ तारा।

चटानों पे चलकर
हिमालय से होकर
वहीं छोड़कर मोटे-झोटे वे कपड़े
वह भारत में आया।
यहाँ लोग गिरते चले जा रहे थे
परिश्रान्त होकर

पड़ी थीं यहाँ हड्डियाँ
सेतुओं के तले बनके थूनी।
न देखा किया वह
शिखाओं को बर्फों तले मात्र यूँ ही,
सियह पत्थरों
हल्की-हल्की हवा को।
चला जा रहा था वह आगे-ही-आगे
अनुपमेय सेना के आगे,
चला जा रहा था
वह दृढ़ता में पृथ्वी की विश्वास लेकर।

हम अब जाके समझे हैं
उजली शिखाओं पे बर्फों के ऊपर,
हिमालय में रेरिख ने सेतु बनाये।
ये सेतु हैं उनके लिए
जो कि चिरकाल रहते हैं जीवित।

दिल्ली/मई, 1980

लेव ओशनिन (1912—)

जन्म सन् 1912 में रिबीन्स्क में हुआ। सन् 1936 से 1939 तक मक्सीम गोर्की विश्व-साहित्य संस्थान में शिक्षा प्राप्त की। पहली रचना सन् 1930 में प्रकाशित हुई। शान्ति के लिए संघर्ष एवं प्रेम-गीति-जैसे विषयों का उनकी रचनाओं में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'सदैव मार्ग में' (1948) एवं 'कविताएँ प्रेम के बारे में' (1957) वे कृतियाँ हैं जिन्होंने सोवियत काव्य पर अपनी छाप छोड़ी है। बीसवीं शती के चौथे दशक में गीतों की ओर आकृष्ट हुए। अब तक अनगिनत गीतों की रचना कर चुके हैं, जिनमें से अधिकतर को सोवियत संघ के विभिन्न संगीतज्ञों ने संगीतबद्ध किया है। सन् 1950 में उन्होंने सरकारी पुरस्कार प्राप्त किया।

भारत-चिन्तन

तुझको मैंने पढ़ा, तुझ पे चिन्तन किया,
नीलिमा ने समुद्रों की जन्मा तुझे।
तेरा लेखा अलग, तू है बिल्कुल अलग
तू तो बिल्कुल अलग है मेरे रूस से।

आज पलटा है पीछे इतिहास फिर
मेरे अश्वों के, तेरे गजों के क़दम,
हाँ, वह तेरे अछूतों की आहें वहाँ
हाँ, यहाँ जन्म से पागलों का रुदन
ताज में तेरे दर्शन हों देवत्व के
तेरी धरती की जादू भरी यह छटा—
कितना मिलता है तू तो मेरे रूस से···

बूढ़े चेहरों पे ये अनगिनत झुर्रियाँ
दन्तगाथाएँ जो देश में घूमतीं
दसियों भाषाएँ आपस में गडमड हैं जो—
कितना मिलता है तू तो मेरे रूस से।

थी अभी कल तलक ख़ाली धरती जहाँ
घाव अपने दिखाती ग़रीबी जहाँ,
हो गया फिर से निर्माण आरम्भ यूँ
जैसे होली में रंगों की बरसात हो
थी हवा ही जहाँ खाक उड़ाती हुई
आज मानव ने धरती को जीवित किया
आज निर्माण-उपवन में भी किस कदर
कितना मिलता है तू तो मेरे रूस से।

अब न वह युग रहा ना वह धरती रही
अब न वे चाहतें ना वे यादें रहीं
तुझको जाना नहीं तुझको समझा नहीं
तू नहीं रूस, तू और ही चीज़ है
जानता हूँ मैं यह। फिर भी है और,
कुछ और प्यारा मुझे
तेरे मौलिक व्यक्तित्व का उजलापन।
···चीखती हैं गगन में कहीं सारसें—
कितना मिलता है तू तो मेरे रूस से!
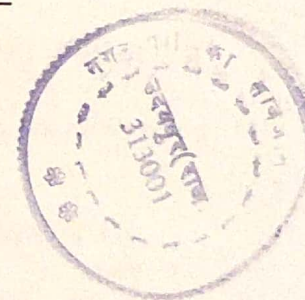
अलीम केशोकोव (1914—)

जन्म 9 जुलाई, 1914 को शालूश्का नामक गाँव में हुआ, जो सोवियत संघ के काबरदीन-बलकार स्वायत्त जनतन्त्र में स्थित है। सन् 1935 में उत्तर काकेशियाई शैक्षिक संस्थान एवं तत्पश्चात् सामाजिक विज्ञान अकादमी में शिक्षा प्राप्त की। 1941-45 में द्वितीय महायुद्ध में भाग लिया। सन् 1934 में पहली रचना प्रकाशित हुई। 'अश्वारोही की राह' तथा 'यौवन की धरती' वे काव्य-संग्रह हैं, जो बहुत लोकप्रिय हुए।

अपनी रचनाओं के माध्यम से युद्धकाल में सोवियत जनता की वीरता को प्रतिबिम्बित करते रहे। युद्ध समाप्ति पर समाजवादी समाज के निर्माण-कार्य को अपनी रचनाओं का मुख्य विषय बनाया। उनकी अधिकतर कृतियों में काबरदीन-बलकार लोगों के जीवन की सजीव छवि देखने को मिलती है। अलीम केशोकोव को पाँच पदकों एवं विभिन्न पुरस्कारों से विभूषित किया गया है।

सिन्दूर

न घर चाहिए, न खेत और उपवन/नहीं चाहिए बिन पति मुझको जीवन।

—महाभारत से

खुशी से झपटती हुई, नाचती-सी
चिता बुझ गयी
उड़ी मेरे स्वामी की आत्मा उधर
अलावों में बस राख ही रह गयी
मेरे जिस्म में ठण्ड-सी आ घुसी
यही अब तो मर्ज़ी है तक़दीर की
मैं कल पोंछ डालूँगी सिन्दूर भी।

सुहागिन की कुमकुम यूँ मुरझा गयी
ज्यों हो पोस्त के फूल की पंखुड़ी
खुशी से न भाई ने पहनाई हैं
मेरे विधवा हाथों में ये चूड़ियाँ
सबसे ज़्यादा है दुखदायी यह बात ही
कि मैं पोंछ डालूँगी सिन्दूर भी।

बरस-भर ही मैं बस सुहागिन रही
कि मैंने शहद बस चखा-भर ही था
मैं बाजार से लाल रेशम खरीद
सवेरे-सवेरे ज्यों ऊषा खिले
बनाऊँगी साड़ी मैं इक आग-सी
कि मैं पोंछ डालूँगी सिन्दूर भी।

हुए हैं बरस बीस मुझको औ' अब
हुआ है विधुरता से इनका विवाह
अब अग्नि ही शायद अगिन-देव ही
उसे शान्त कर पाये संसार में
मेरे भाई, मैं खाक हूँ मुट्ठी-भर
है सर्वशक्तिशाली मगर तू पवन,
कि मैं पोंछ डालूँगी सिन्दूर भी।

कि अब मेरी शादी का उजला लिबास
बड़ा खुश हो जो रूप बदली का ले
अब तो यूँ हो कि बस मैं सितारा बनूँ,
चिमट जाये रजनी के तम्बू से जो
कहीं छोड़ विधवा को जा चमके वह जो
सियह नीर पर
कि मैं पोंछ डालूँगी सिन्दूर भी।

1973

ले दूँगा तुझे मैं सोने का एक हल

ऐ मेरे बैल तेरे लिए मैं खरीदूँगा सोने का हल···

—भारतीय गीत

उदय ने उठाया सात मील लम्बा पग है
डूबा एक तिहाई अम्बर लाली के है रस में
जोश में आ बैल मेरे, पट्ठे मेरे जोश में
पीछे-पीछे खीच अपने, लकड़ी का यह हल तू ।

मेरे साथ काम सारा आधा-आधा बाँटकर
इतना तो तू सोचने-समझने का यत्न कर
फूल जो हमको करती है प्रदान उसी देवी ने
भेजा आशीर्वाद है ।

देवी भी यह जान ले,
भौंहें जिसकी सुरमे से भी बढ़के काली-काली हैं
नीले-नीले गुम्बद नीचे
बच्चे हैं हम शेर के ।

तू है शक्तिशाली मेरे बैल, शक्तिशाली है,
ऐसा भी तो भारी नहीं काम यह जुताई का
जोश में आ बैल मेरे, मेरे पट्ठे जोश में
जम के रहियो, बुड्ढे, कहीं हिम्मत न तू हारियो !

कितने ही युगों से तेरा रिश्ता है जुताई से,
यूँ भी होता आया है रहा तू नदी-तट पर
यूँ भी होता आया है कि ऊषा की किरण पड़ी
सदा तेरे सीगों पर ।

घनी शाखाओंवाले आम के इस पेड़ नीचे
मेरी घरवाली ने दो जुड़वाँ बच्चे जने थे
तड़के-तड़के उठना मुझको आजकल तो पड़ता है
आजकल तो मुँह अँधेरे उठना तुझको पड़ता है ।

ना तो तू है हाथी कोई, ना मैं कोई राजा हूँ
पोंछता ही रहता हूँ मैं बूँदें अपने माथे से
चावल की दो फसलें हमको अबकी बार लेनी हैं
कौन जाने, साथ अपना दे दे अपना भाग्य भी ।

बैल मेरे, आज तुझसे मेरा इतना वादा है
निपटेगा जब काम सब कटाई व उगाही का
जाऊँगा जरूर मैं बनारस एक बार फिर
डुबकी लगाऊँगा गंगा में एक बार फिर ।

उसके ही सम्मान में अबके, नेहरू की जो बेटी है
पूजा एक बार फिर मैं विधिवत करूँगा
देश की वह नेता है मैं उसके संग जुड़ा हूँ
भूमि के वसीले[1] जिस पे खेती-बाड़ी करता हूँ ।

जोते हुए खेत में जो डूबा हुआ पानी में
उजला-उजला पल यह ज्वलित और ज्यादा है
जोश में आ बैल मेरे, पट्ठे मेरे, जोश में
ले दूँगा तुझे मैं सोने का एक हल ।

1973

1. माध्यम से ।

येव्गेनी दोल्मातोव्स्की (1915—)

सन् 1915 में मास्को में येव्गेनी दोल्मातोव्स्की का जन्म हुआ। सन् 1937 तक मक्सीम गोर्की विश्व-साहित्य संस्थान में शिक्षा प्राप्त की। उनकी रचनाएँ सन् 1930 से प्रकाशित होने लगीं जिनमें 'गीति' (1934) व 'दिन' (1935) मुख्य हैं।

1941-45 के दौरान द्वितीय महायुद्ध में भाग लिया। 'लापता हो गया', 'एक तकदीर' (1942-46) युद्ध-काल की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। अनेक लोकप्रिय गीतों के लेखक हैं जिनमें कई फ़िल्मी गीत भी शामिल हैं—'वनों के विषय में' (1949), 'निष्ठा' (1970), 'मातृभूमि सुन रही है' (1950)। देशभक्ति एवं करुणा का स्वर उनकी कृतियों के उल्लेखनीय तत्व हैं।

पूर्व शासक

ताजमहल के सफ़ेद पत्थर पर
जिसमें शतियाँ कई सुरक्षित हैं
चिह्न जाहिल के, चिह्न निर्लज्ज के
टेढ़ी संगीन के पुछल्लों के
वहीं बरतानिया के सैनिक ने
जालिमों को उखाड़ फेंका है।
लाल माणिक की चौंध ठुकराकर
उसने ले ली अकीक की कालिख
और दीवार पर के कतबों से
पत्थरों को निकालकर मानो
उसने फूलों को कर दिया अन्धा
यह न सोचा हिसाब भी होगा।
आह ! टॉमी, वह नेकदिल लड़का

टेम्ज़ पर भीगी चाँदनी के तले
अपने मजबूज पैविक घर में
ऊधमी था, बड़ा पियक्कड़ था।
आगरे से लिखा कि गर्मी है
है अकारण ही माँ का ग़म सारा
घर में तोहफ़ों का इन्तज़ार करें
और रुतबे में भी तरक्की का।
·· देर करके मैं पहुँचा भारत में
मैं न टॉमी से मिल सका लेकिन
काँप जाता हूँ याद करते हुए
सारी सदियाँ बिंधी हुई बिल्कुल।
मैंने देखे थे और देशों में
चाहे बेटे थे और बापों के
कारखानों में कैद कितने ही
टॉमी-जैसे जवान गबरू भी।
उसका कानूनी पूर्वज जो था
दूर रहकर पला-बढ़ा चाहे
वह विजेता है उपनिवेशों का
हो गये हैं जो उससे अब आज़ाद।
संगमरमर के चेचकी धब्बे,
करतीं दूषित युगों को संगीनें।
हैं परिचित-से दस्तख़त फिर भी
मिलती-जुलती हैं कितनी तहरीरें।

हथेली के चिह्न

ओह, बंगलौर, बंगलौर
        जो याद है उम्र-भर के लिए
थे वे उजली-सी दीवार पर
        नन्हीं-नन्हीं हथेली के चिह्न
अधमिटी-सी सफ़ेदी की दीवार पर
        दीखते थे वे अच्छी तरह चाँदनी के तले
वे दमकते हुए-से हथेली के चिह्न
        जैसे पंजे के अन्दर हो पंजा गड़ा !

गन्दे-गन्दे-से मैले-से
लड़को, शरारत लिये
ये हथेली के चिह्न
छोड़ जाते हो दीवार पर किसलिए ?
काला-काला-सा गारा
यह छिछलाती नदिया के तल से उठाया हुआ
यह हथेली के चिह्न
जिस तरह फूल की पंखुड़ी हो कोई !
इन शरारत के हँसमुख
निशानों को कोई मिटाता नहीं
इनको लीपा था खुशकिस्मती के लिए
किंवदन्ती है देती गवाही यही
किंवदन्ती युगों बूढ़ी सामान्यतः
निकला करती है सच ।
की थी यह घोषणा
एक चंचल-से बच्चे ने बंगलौर के
यह हथेली के चिह्न
इनको दीवार पर ही सुरक्षित रखे ।
या सितारे सियह,
या सुलगता अदब,
इनमें है बात कोई भरी भेद से
और दुश्वार है इनका हल ढूंढ़ना ।
जानना है जरूरी यह संसार सब
सारी घटनाएँ भी औ' क़बीले भी सब
पूर्व की साफ़-सी चाँदनी के तले
सुलगा करते हैं चिह्न ।
इतना अफ़सोस है
यह लिखा था न तक़दीर में
मैं भी ऐसे ही अपनी हथेली के चिह्न
छोड़ दूं एक उजली-सी दीवार पर
अपने फैले हुए-से इसी पंजे में
मैं भी पहचान अपनी सुनिश्चित करूँ ।

1965

एदुआर्द मेझेलाईतिस (1919—)

सोवियत लिथुआनियाँ के प्रसिद्ध कवि एदुआर्द मेझेलाईतिस के प्रारम्भिक जीवन-काल में सुख-चैन के लिए कोई स्थान नहीं था। उनका जन्म सन् 1919 में हुआ। बचपन दरिद्रता व अभाव में व्यतीत हुआ। मेझेलाईतिस की रचनाएँ उनके पाठकों को भावनाओं के सागर तथा किसी बेलगाम शक्ति के समान बेक़ाबू होती हुई-सी प्रतीत होती हैं। उनका सम्बन्ध बीसवीं शती की उस परम्परा से है जिसकी आधार-शिला मायाकोव्स्की तथा हिक्मेत-जैसे कवियों ने रखी थी। अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए परम्परागत विषयवस्तु व छन्दों को त्याग कर कवि ने नयी एवं वैभवपूर्ण काव्य-सामग्री को खोजा व अपनाया है।

मेझेलाईतिस ने फासिज्म के विरोध में, उस युद्ध के खिलाफ़ बड़े ज़ोर-शोर से आवाज़ उठायी है जिसने विनाश का मुंह खोल दिया था। शान्ति की रक्षा करते हुए वे मात्र शान्ति की ही रक्षा नहीं करते, अपितु उसके माध्यम से अपनी रचनाओं का मुख्य लक्ष्य कला व संस्कृति की रक्षा मानते हैं।

शाश्वत शिव व मर्त्य रिक्शा

[1]

शाश्वत शिवालय में सख्त और उद्दण्ड-सा
शाश्वत नृत्य के
चक्र पूरे करता है,
अपनी शाश्वत टाँगें सीधी-सीधी रखता है
शिव पसारा करता है शाश्वत करों को भी।

और यह जो रिक्शा है—एक जोड़ा साधारण मर्त्य बस है टाँगों का
एक जोड़ा हाथों का। गर्म-तप्त रस्तों पर दौड़ता है मुश्किल से

दौड़ता है बोझिल-सा, दौड़ता ही रहता है
खोल-खोल मुंह अपना वह हवा पकड़ता है, मानो कोई मछली हो।

रात-दिन खुले बन्दों भूख वास करती है पेट में चिरंजीवी
जैसे कोई दीवाना वायलन बजाता हो खींच दोनों टाँगों को
तार मानो हों वे भी। और दोनों हाथों को वायलन के ऊपर से
तार जैसे अन्तिम हों—आपके रुलाने को इतना कुछ काफ़ी है।

रास्ते को छूता है बायीं टाँग से अपनी
खीचता है दायीं को, ठीक से चले रिक्शा
तार थरथरायेगा, थरथरा के जागेगा
रो उठेगा वह खुद भी, दूसरे भी रोयेंगे।

धुंधला होगा संगीतज्ञ तीन-पहिया गाड़ी में
दौड़ और सरपट तू ! तप के दिन हुआ उजला
दौड़ और सरपट तू ! चीखती हैं सब सड़कें
रागिनी से टाँगों की उनका दिल भी भर आया !

दौड़ और सरपट तू···! और लड़खड़ायेगा
झुक पड़ेगा तू खुद ही बिन कहे किसी से कुछ
गर्म-गर्म-सा अस्फ़ाल्ट अपना मुँह छिपा लेगा···
यानी तार टूटे हैं—खत्म हो गया संगीत।

शाश्वत शिवालय में, सख़्त और उद्दण्ड-सा
शाश्वत नृत्य के
 चक्र पूरे करता है
अपनी शाश्वत टाँगें सीधी-सीधी रखता है
शिव पसारा करता है शाश्वत करों को भी।

[2]

लहरों बाद लहरें हैं, लहरों बाद लहरें हैं
आदमी को ढोता है आदमी ही रस्तों पर···
इस पे हो यक़ीं कैसे ? चुप मैं नहीं रह सकता
साँस लेके जी उट्ठा सामने पुराना युग
लहरों बाद लहरें हैं, लहरों बाद लहरें हैं।

इस पे हो यक़ीं कैसे ? चुप मैं रह नहीं सकता !
लड़खड़ाता हूँ जैसे पाप के वज़न से मैं···
जल रही है लहरों की एक सुनहरी धारी-सी
काँपने-सी लगती है वह हवा के झोंके से···
इस पे हो यक़ीं कैसे ? चुप मैं रह नहीं सकता !

काँपती है लहरों की, एक सुनहरी धारी सी
क्या हुआ सुनहरापन आदमी मगर तेरा ?
दर्द से, लहू से बस तेरी आँखें छलकी हैं
आँसुओं से छलकी हैं, हैं नमक तेरे आँसू
काँपती है लहरों की एक सुनहरी धारी-सी।

दर्द से, लहू से बस तेरी आँखें छलकी हैं
मोटी-मोटी बूँदों में बह चला पसीना भी।
आदमी को ढोता है आदमी ही, यह क्या है !
नंगे पैरों के नीचे पटरियों की सरसर है
दर्द से, लहू से बस तेरी आँखें छलकी हैं।

आदमी को ढोता है आदमी ही, यह क्या है !
भोर होते ढोता है, भोर तक ही ढोता है
इस पे हो यक़ीं कैसे ? चुप मैं रह नहीं सकता !
आदमी जो ढोता है आदमी को, अब उसको
दे रहा है आवाजें एक दूसरा रस्ता।

चुप मैं रह नहीं सकता, इस पे हो यक़ीं कैसे ?
साँस ले के जी उठा सामने पुराना युग
लहरों बाद लहरें हैं, लहरों बाद लहरें हैं।

[3]

रात बढ़ती आती है, खत्म काम होता है
अधमरा-सा पानी के पास लेट जाता है।

भूख, दर्द, कीचड़, भय—सबसे बेखबर है वह
इस तरह वह लेटा है, सिर के नीचे पत्थर है।

जा के खींच लाता है कम्बल आसमानों से
रात के समय कुछ तो जिस्म ढाँपने को हो।

खींचता है एक कम्बल अपने पूरे साइज़ का
जो बना है टुकड़ों के नीले-नीले तारों से।

दुश्मनों से, दर्दों से, उसको भय नहीं लगता
शब्बखैर ! सपनों के लोक में वह जाता है।

पाम एक घमण्डी-सा जल पे झुक गया है जो
तोड़ता है कुछ केले उससे वह सुनहरी-से।

एक अच्छे अंग्रेज़ी कोट में दुबककर वह
सपनों में टहलता है, जैसे कोई राजा हो।

फेंकता है खुश होकर हर तरफ़ निगाहों को
खूब खाता-पीता है, खूब खाता-पीता है

दर्द उसके दिल का है रेंग आता सपनों में
ज्यों हो लकड़ी, खाता है अपनी देह वह हर पल।

काँच की नज़रवाला भूखा-भूखा कीड़ा है
भूख, भूख, चिरन्तन भूख, एक पुरानी दुश्मन है।

ढलती जा रही है रात, बोझिल है निशाँ उसके
आसमाँ को ओढ़े वह जल के पास लेटा है।

भूख, दर्द, कीचड़, भय—सबसे बेखबर है वह
नींद है अनन्त उसकी, सिर के नीचे पत्थर है
आदमी जुता है और आदमी को ढोता है
बीसवीं
शती की इस
शाह राह से होकर !

रसूल हमज़ातोव (1923)

8 सितम्बर, 1923 को दाग़िस्तान के जन-कवि गमज़ात त्सादासा के घर जन्म लिया। बचपन व लड़कपन उनके गाँव त्सादा में बीता। प्रारम्भिक शिक्षा दाग़िस्तान में हुई। तत्पश्चात् 1945 में मास्को के गोर्की विश्व-साहित्य संस्थान में रूसी व विश्व साहित्य के साथ परिचय शुरू हुआ। 'मेरी धरती' उनकी कविताओं के उस संकलन का नाम है जो 1948 में प्रकाशित हुआ। अब तक लगभग चालीस संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। भारत के साथ उन्हें एक विशेष लगाव है, जिसका आभास इस तथ्य से होता है कि अब तक लगभग एक दर्जन बार भारत आ चुके हैं और यहाँ रहकर यहाँ के लोगों, रीति-रिवाजों, सामाजिक सम्बन्धों तथा आर्थिक पहलुओं का गहराई से अध्ययन किया है जिसकी छाप उनकी कविताओं में बहुत साफ़ नज़र आती है।

दुनिया में सबसे पहले

कहते हैं हिन्दवासी कि धरती की कोख ने,
दुनिया में सबसे पहले दिया साँप को जनम।
पर्वत के वासियों का मगर यह विचार है
संसार में उक़ाब ने पहले रखा क़दम।

पर मेरी अपनी राय में दुनिया में सबसे पूर्व
इंसान आये और फिर आया यह इन्कलाब,
उनमें से कुछ ने साँप का चोला पहन लिया
कुछ धीरे-धीरे बन गये इंसान से उक़ाब !

यत्न करके देख लूं

बौद्ध कहते हैं अमर है आत्मा
और यह आवागमन का है उसूल
कि कोई योनि बन जाती है वह
यदि नहीं मानव—कोई पक्षी या फूल।

कुछ भी हूँ, छोटा-बड़ा कुछ भी सही
एक कवि हूँ—यत्न करके देख लूं
तन व मन से क्यों न जीवनकाल में
फूल भी, मानव भी, पक्षी भी बनूं।

तेरा खत पढ़कर

पत्र पर मानों मुहर हो, इस तरह हिन्दोस्तान
जलती, तपती, लाल बिन्दी और है माथा तेरा
खोलकर यह बन्द खत तुझको समझने के लिए
पंक्तियों के बीच मानों कर रहा हूँ यात्रा।

जिस तरफ़ उट्ठी निगाहें—नीची-नीची झुग्गियाँ
अनगिनत खत यूं तो अब तक आ चुके हैं मेरे पास
तेरा खत पढ़कर मगर जितना हुआ हूँ मैं दुखी
मैंने शायद ही कभी पाया हो खुद को यूं उदास।

येव्गेनी विनोकूरोव (1925)

जन्म 22 अक्तूबर, 1925 को हुआ। सन् 1951 तक मक्सीम गोर्की विश्व-साहित्य संस्थान में शिक्षा प्राप्त करते रहे। सन् 1948 में पहली रचना प्रकाशित हुई। 'नीलिमा' (1956), 'स्वीकृति' (1958), 'मानव-मुख' (1960), 'संगीत' (1964), 'लय' (1966) उनकी मुख्य कृतियाँ हैं।

मानव का आध्यात्मिक साहस, उसके भीतरी संसार का अध्ययन तथा मानव-चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर चिन्तन विनोकूरोव की रचनाओं के मुख्य विषय हैं। जीवन के समस्त रूपों के प्रति निष्ठा, दार्शनिक दृष्टिकोण से वास्तविकता को परखने, समझने व समझाने का प्रयास उनकी कविताओं के उल्लेखनीय तत्व हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[1]

मगर है दूसरा संगीत जग में
कि जिसके स्रोत और उद्गम अलग हैं।
रवीन्द्रनाथ ने रखकर हथेली
इस भुवन पर,
उसे गहराइयों में जा के देखा।
जिसे दुनिया वह समझा, एक क्रम था !···
मगर सबकुछ न जाने किस दिशा में, झपटता जा रहा था
खिंच रहा था,
था यह तूफ़ान भद्दी सलवटों का
उसी के वस्त्रों, उलझी लटों का

जरा देखो, खड़ा है छोर पर वह,
नजा* की बात आँखों में छिपाये।
टिकाये नंगे पाँवों को धरा पर
अनस्तित्वी निशा का दीप उठाये।

[2]

निकाल क्या बाहर करूँ सीने से प्रकृति तुझे ?
तोड़ सीमा, तेरे सँग या डाल लूँ अपना अचार ?
मैं तो बस आधा ही
सम्बन्धित हूँ तुझ निस्सीम से
मुझको प्रकृति तू ले ले फिर से अपनी गोद में

जन्म फिर दे, याचना करता हूँ मैं,
स्वाद में नमकीन है आँसू जो, टपका दे उसे
तुझपे वह जचता नही !

देखने दे साड़ी पहने स्त्री को, धीमे-धीमे
पार करती है जो रस्ता
जिस तरह 'बेली नलीव',
जो अचानक खुल गये ऊपर तलक
उन ही घुटनों के गढ़ों-जैसे सेब।

लेकिन अब ऐसे चिरन्तन चक्र में टैगोर क्या
और मैं दोहराया जा सकता नही ?···
मैं ही प्रकृति के बाहर, मैं ही प्रकृति में हूँ,—
मैं हूँ सीमा पर, मैं अपने साथ सब झगड़ों में हूँ।

1971

* मृत्यु से तनिक पहले का समय।

राबर्ट रोझदेस्तवेन्स्की (1932)

कोसीखा नामक गाँव में 1932 में जन्म हुआ। सन् 1956 में मक्सीम गोर्की विश्व-साहित्य संस्थान से डिग्री प्राप्त की। प्रथम रचना 1950 में प्रकाशित हुई। पहला काव्य-संग्रह 'पुष्पागम की पताकाएँ' सन् 1955 में प्रकाशित हुआ। 'मेरा प्यार' (1955), 'तीसवीं शताब्दी के लिए एक पत्र' (1963) तथा 'अर्पण'-जैसी कृतियों में, जो अपने स्पष्ट रंगों के लिए उल्लेखनीय हैं, रोझदेस्तवेन्स्की साम्यवादी नैतिकता के मापदण्डों व नियमों का जोरदार समर्थन करते हैं। शान्ति के लिए संघर्ष, अन्तरिक्ष पर मानव-जाति का आधिपत्य उनके वे प्रिय विषय हैं, जिनके सम्बन्ध में उन्होंने बार-बार लेखनी उठायी है।

रूसी भाषा में सोवियत जनतन्त्रों के लेखकों की रचनाओं का अनुवाद करने में विशेष रुचि लेते हैं। उनकी अपनी कृतियाँ विभिन्न सोवियत भाषाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं में भी अनूदित, प्रकाशित हो चुकी हैं। साहित्य में योगदान के लिए उन्हें दो पदकों से विभूषित किया गया है।

सोचना होगा

भारी बूँदें
गिरीं मिट्टी पर
जल ले जानेवाले नल में
बह निकली है जल की धारा।
तंग गलियों में
पाम खड़े हैं
मानो शेव बनानेवाले दानव-जैसे ब्रुश खड़े हों···
शायद

धरती थकी है बेहद—
उसके हजारों वर्ष पुराने
रग-पट्ठे सब ऐंठ गये हैं।
शायद उसका समय न आया।
या फिर शायद आ भी चुका हो
गुजर चुका हो···
ऐसा संगम
सुख का दुःख का
ऐसी घृणा
घड़ी की दौड़ से।
सोचना होगा
और ही कुछ अब।
घिसे-पिटे पैमानों का पलड़ों का अब कुछ
करना होगा।
नहीं तो क्या?
नहीं तो बेईमानी होगी
गडमड होते रहे हैं
हफ्ते
वर्ष
और शतियाँ।
यहाँ तो जो कुछ बीत चुका है
कहीं नहीं वह हुआ है ओझल।
यहाँ तो जो है आनेवाला
कहीं नहीं वह जा पायेगा···

साथ-साथ ही तैर रहे हैं—
भारी-भरकम बड़े-बड़े-से
एक स्रोत से जन्मे मानो
कभी तो हाथी
एक ही लय में
धक्का देता हुआ लट्टों को,
कभी ट्रॉली
क़द में चार हाथी के बराबर।

अनुभव करता, सुनता, देखता हूँ मैं यह सब
दुनिया पर सागर की लहरें गूँज रही हैं
गूँगी-गूँगी नजरों से
पत्थर का विष्णु देख रहा है।

उड़ते रॉकेट
देख रहा है
और सितारे
उजड़े-उजड़े जगमग-जगमग।
उड़ते हैं वे
छोड़ के अनदेखे चिह्नों को···

और देख मुझे मुस्काता है
एक अजनबी
लड़का।

लड़का
हजारों वर्ष पुराना!

1980

येकातेरीना शेवेल्योवा

सुप्रसिद्ध सोवियत कवयित्री येकातेरीना शेवेल्योवा विभिन्न सामाजिक कार्यों से सम्बन्धित होने के साथ-साथ सोवियत शान्ति-रक्षा समिति की सदस्या हैं। शान्ति-रक्षा समिति की सदस्या होने के फलस्वरूप उन्हें विश्व के विभिन्न देशों की यात्रा करने तथा वहाँ की जनता को समीप से देखने व लोगों के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर मिला। विदेश यात्राओं के दौरान संचित अनुभवों की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में भी होती है। भारत, श्रीलंका, अमरीका व योरोप के कई देशों का जीवन उनकी कृतियों का मुख्य विषय है। आकस्मिक घटनाओं एवं परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन शेवेल्योवा की रचनाओं की मुख्य विशेषता है।

मद्रास का बन्दरगाह

मद्रास में हम हैं।
लंगरगाह में—
है गर्मी, तांबे की बू।
लिपटा हुआ है रोशनियों में बन्दरगाह
डूबा हुआ है चीखों में।
अँटी हुई है चप्पा-चप्पा
मालवरदार जहाजों से।
देख, वहाँ क्या होता है!
बाण क्रेनों के लटके हैं
जैसे पक्षी आधी रात में,
धुंधली-धुंधली बातें जैसे।
है रस्सों पर विचित्र उग्रता
वृक्षलताओं, साँपों की।

यह मद्रास का बन्दरगाह तो बस गड़बड़ है
तपा हुआ एक लावा है।

ढलवाँ लोहे के
एक बीहड़ वन से होकर गुजर रहे हैं
जगह-जगह मिलता है हमको
लिखा हुआ 'ओदेस्सा'।

भारी है निर्माण चल रहा
मिलता हर सामान समय पर
राक्षसों की तरह नहीं हम,
देवताओं के रूप में बिल्कुल,
नरक से होकर गुजर रहे हैं
...खुश्बू भी है सीलन भी है,
चौखटे में है अग्नि-सागर
आज हमारे सामने मानो
रचित हो रही स्वयं सृष्टि।

1960

भारत

भारत, तुझसे प्यार है मुझको
खुद, मैं भी हैरान हूँ इस पर
तेरी नजर की धुंधलाहट से
मिलती हूँ, कोई खोज हो जैसे।
तेरी छवि दुखिया-दुखिया-सी
युगों युगों के दोराहे पर।
निर्धन छत, गीतों का लावा
नृत्य की यह चंचल भौंहें।
कड़ुवी-कड़ुवी कॉफ़ी सहित यह
भगवानों, रिक्शाओं सहित यह
एशिया का यह देश खड़ा है

मेरे सम्मुख बन के पहेली।
एशिया किन्तु बँटा नहीं है,
जुड़ा है एक संघर्ष के द्वारा,
लेनिन की मेधा ने मुझे क्या
तेरे सँग नहीं जोड़ दिया है?
वास्तव में क्या रूस व भारत
साथ नहीं रहते हैं युगों से?
एक-दूजे को देखा नहीं क्या
लोगों ने पर्वत के परे से?
चाहने लगोगे, जीवित छूकर
रस्तों की तपती दूरी को
पेड़ों की भास्वर लाली को
गाँव के जर्जर परमेश्वर को
इन सब तारों द्वारा दिखती
बेगाने फैलाव को नभ के।
कुष्ट व चेचक की मारी है
मीटिंगों में रौंदी दुनिया।
···भाती है मित्रों सँग चाय,
भाती है बूढ़ों की चुप्पी,
सारे दुखों के होने पर भी
तेरे भाग्य पर यकीं है भारत।

1961

तुझको मैंने पढ़ा, तुझ पे चिन्तन किया
नीलिमा ने समुद्रों की जन्मा तुझे
तेरा लेखा अलग, तू है बिल्कुल अलग
तू तो बिल्कुल अलग है मेरे रूस से !

आज पलटा है पीछे इतिहास फिर
मेरे अश्वों के, तेरे गजों के क़दम
हाँ, वह तेरे अछूतों की आहें वहाँ
हाँ, यहाँ जन्म से पागलों का रुदन
ताज में तेरे दर्शन हों देवत्व के
तेरी धरती की जादू-भरी यह छटा--
कितना मिलता है तू तो मेरे देश से ! ···

—लेव ओशानिन की एक कविता से